

श्रृङ्गी मुनि कृष्णदत्त जी महाराज

ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत चमत्कार

एक पुरातन ऋषि का दिव्य जन्म परमपिता परमात्मा की विचित्रता से युक्त, अद्भुत और विलक्षण सृष्टि का उद्घाटन पूज्यपाद गुरुदेव श्रृङ्गी ऋषि कृष्णादत्त जी महाराज के प्रवचनों से हुआ। वह ईश्वर का एक अलौकिक और दिव्य प्रकटीकरण है और सृष्टि के इतिहास की एक मात्र, विलक्षण अद्भुत घटना भी। जब १४ सितम्बर सन् १९४२ को, उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद जिले के, ग्राम खुर्रमपुर, सलेमाबाद में एक विशेष बालक ने जन्म लिया। बालक जन्म से ही एक विलक्षणता से युक्त था और विलक्षणता यह कि जब भी यह बालक सीधा, शवासन की मुद्रा में, कुछ अन्तराल लेट जाता या लिटा दिया जाता, तो बालक की गर्दन दायें-बायें हिलने लगती, लगभग १५ मिनट वेद मन्त्रोच्चारण होता और उसके उपरान्त सृष्टि के आदि काल से वर्तमान काल तक के विभिन्न कालों के स्वयं और विभिन्न ऋषि-मुनियों के चिन्तन और घटनाओं पर आधारित ४५ मिनट तक एक दिव्य प्रवचन होता। बाल्यावस्था होने के कारण, प्रारम्भ में आवाज अस्पष्ट होती और जैसे-जैसे आयु बढ़ने लगी, वैसे-वैसे ही आवाज और विषय दोनों स्पष्ट होने लगे। पर एक अपठित ग्रामीण बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जन मानस आश्चर्य करने लगा, बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनों की गूढ़ता के विषय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नही था। ग्रामीण, निर्धन और अपठित समाज होने के कारण भूत प्रेत का प्रभाव मानते हुए बहुत-सी चिकित्सा भी कराई गई, पर सब व्यर्थ रहे। क्योंकि बालक की यह प्रवचन क्रिया तो यौगिक थी यह तो सतत् ऐसे ही चलती

रही। आवाज जब कुछ स्पष्ट हुई तो इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनों से ही हुआ। कि यह आत्मा सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालों में श्रृङ्गी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल में आदि ब्रह्मा के शाप के कारण इस युग में जन्म लेने का कारण बनी। और इस जन्म में अपठित रहने की स्थिति में भी जैसे ही यह शरीर श्वासन की मुद्रा में जाता तो कुछ अन्तराल बाद स्वतः ही योग समाधि की स्थिति बन जाती। जहां इस दिव्यात्मा का पूर्व जन्मों का ज्ञान उद्बुद्ध हो जाता और जैसा काल देखा था उस काल के अनुकूल व्याख्यान कण्ठ आ जाते। क्योंकि, जन्म जन्मान्तरों के संस्कार स्मृति में, अन्तःकरण में विराजमान रहते हैं। और अन्तरिक्ष में उपस्थित सूक्ष्म शरीर धारी दिव्यात्माओं के समक्ष एक सत्संग सदृश्य स्थिति बन जाती, जिसमें इस महान आत्मा का सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं के लिए प्रवचन होता। जिसमें इस आत्मा के पूर्व जन्मों के शिष्य महर्षि लोमश मुनि महाराज, और पूज्य महानन्द जी के प्रवचन भी होते। क्योंकि इस दिव्यात्मा का स्थूल शरीर यहां मृत्यु लोक में स्थित होने के कारण, वहां अन्तरिक्ष में दिव्य आत्माओं के सम्मुख सत्संग में दिया जाने वाला दिव्य प्रवचन, इस शरीर के माध्यम से यहाँ उपस्थित जन मानस को भी सुनाई देते। इन प्रवचनों में ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है, ब्रह्माण्ड की विशालता, प्रत्येक लोक में जीवन की अनिवार्यता का बोध, सृष्टि का उद्देश्य, पूर्व कालों में विज्ञान की विशालता का दिग्दर्शन, वैदिक संस्कृति का उज्ज्वलतम स्वरूप, आत्मा, परमात्मा और प्रकृति का स्वरूप, विभिन्न कालों का आँखो देखा सदृश्य वर्णन, भगवान राम और भगवान कृष्ण के जीवन की दिव्यता का साक्षात दर्शन, समाज में प्रचलित रूढ़ियों का निवारण करने वाली दृष्टि, क्या कुछ दिव्य नहीं है इन दिव्य प्रवचनों में ? ये किसी भी मनुष्य को, समाज का और राष्ट्र को उच्च कोटि का जीवन जीने का कारण पैदा करने का सामर्थ्य रखते है।

पूज्यपाद गुरुदेव की २० वर्ष की अवस्था तक ये प्रवचन ऐसे ही जनमानस को आश्चर्यचकित और उनका मार्गदर्शन करते रहे। परन्तु कुछ प्रबुद्ध महानुभावों ने इन प्रवचनों की इस अमूल्य निधि को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से सन् १९६२ से शब्द ध्वनांकित यन्त्र (टेप रिकार्ड) संरक्षित करने का निश्चय किया, और यह क्रम पूज्यपाद गुरुदेव के महाप्रयाण १५ अक्टूबर सन् १९९२ तक होता रहा।

इस अन्तराल पूज्यपाद गुरुदेव के १५०० प्रवचन, टेप रिकार्ड से संरक्षित किये गये। जिनमें सृष्टि के अनन्तकाल की अमूल्य धरोहर निहित है। हम उनको व्यवस्थित रूप से और अनुसन्धानात्मक दृष्टि से पुस्तकों के रूप में प्रकाशित कर रहे हैं। परमात्मा की अनुपम कृपा से प्राप्त, इस अमूल्य धरोहर को जन जन तक पंहुचाने के प्रयास में योगदान देने के लिए, प्रत्येक वैदिक धर्मी को सहयोगी बनना चाहिए। जिससे हम सृष्टि के आदि काल से लेकर आधुनिक काल तक की मानव गाथा को सभी के सम्मुख रख सकें। विश्व कल्याणार्थ की भावना से निहित इस महान ज्ञान की वसुधैव कुटुम्बकम की संस्कृति को प्रसारित कर सकें।

योग दर्शन-प्रवचनांश

1.योग दर्शन १.२

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥

योगः , चित्त , वृत्ति , निरोधः॥

चित्त - चित्त अर्थात् अन्तःकरण (की), वृत्ति - वृत्तियों (का), निरोधः निरोध (सर्वथा रुक जाना), योगः - योग है ।

चित्त अर्थात् अन्तःकरण की वृत्तियों का निरोध सर्वथा रुक जाना योग है।

महर्षि दयानन्द कृत अर्थ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका

उपासनासमये व्यवहारसमये वा परमेश्वरादतिरिक्त-विषयादधर्मव्यवहाराच्च मनसो वृत्तिः सदैव निरुद्धा रक्षणीयेति॥

पदार्थः चित्त की वृत्तियों को सब बुराईयों से हटाके शुभ गुणों में स्थिर करके परमेश्वर के समीप में मोक्ष को प्राप्त करने को योग कहते हैं और वियोग उसको कहते हैं कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा से विरुद्ध बुराईयों में फंस के उससे दूर हो जाता है।

महर्षि दयानन्द-सत्यार्थप्रकाश नवम समुल्लास

ये योगशास्त्र पातञ्जल के सूत्र हैं। मनुष्य रजोगुण, तमोगुण युक्त कर्मों से भी मन को रोक शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त कर्मों से भी मन को रोक शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त हो पश्चात् उसका निरोधकर एकाग्र अर्थात् एक परमात्मा और धर्मयुक्त कर्म इनके अग्रभाग में चित्त को ठहरा रखना, निरुद्ध अर्थात् सब ओर से मन की वृत्ति को रोकना ॥ १ ॥ जब चित्त एकाग्र और निरुद्ध होता है तब सब के द्रष्टा ईश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति होती है । इत्यादि साधन मुक्ति के लिए करे।

ओ३म् अपां फेनेन नमुचेः शिरऽइन्द्रोदवर्त्तयः। विश्वा यदजयः स्पृधः॥ यजुर्वेद १९.७१

इन्द्रो देवता, गायत्री, षड्जः।

पदार्थः हे इन्द्र! सूर्य के समान वर्तमान सेनापते! जैसे सूर्य, (अपाम्) जलों की,

(फेनेन) वृद्धि से, (नमुचेः) अपने स्वरुप को न छोडने वाले मेघ के, (शिरः) घनाकार बादलों को काटता हैए वैसे ही तू अपनी सेनाओं को (उदवर्त्तयः) उत्कृष्टता को प्राप्त कर (यत्) जो (विश्वा) सब (स्पृधः) स्पर्द्धा करने हारी शत्रुओं की सेना है, उनको (अजयः) जीत।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

एक मानव ऐसा है जो अप्रत अपने विचारों से दूसरों को प्रभावित करता हैं वह योग है योग की नाना प्रकार की प्रतिभाएं मानी गई हैं जैसा महर्षि पतञ्जलि जी ने योग की एक ही प्रक्रिया प्रकट की कि अपनी प्रवृत्तियों का निरोध कर लो परन्तु यह निरोध कैसे किया जाता हैं निरोध उस काल में होगा जबकि हमारा अपनी इन्द्रियों पर संयम होगा अब संयम कैसे होगा मानो संयम होगा परमात्मा के चिन्तन से परमात्मा का चिन्तन किया जाएं अध्ययन किया जाएं और मुनिवरों! निदिध्यासन किया जाएं उस काल में मानव अपनी वास्तविक कारण को प्राप्त हो जाता हैं वास्तव में योग की उच्चारण करना मानव के लिए बहुत सहज होता हैं।

एक समय महर्षि रेवक मुनि महाराज से भारद्वाज जी ने कहा था कि हे भगवन्! मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह जो हृदयरूपी गुफा है, मानो यह जो आत्मा का ज्ञान है, इसका जो विद्वान है उसका कोई ऐसा मूल कारण हो जिससे हमारे अन्तःकरण में वह संस्कार न उत्पन्न हों जिन संस्कारों से हमारे आवागमन की एक प्रतिभा बनती रहती है। गाड़ीवान रेवक थे उन्होंने कहा कि आपने यह वाक्य तो बहुत सुन्दर कहा है परन्तु इसका विचार विनिमय किया जाएं। हमारे ऋषि मुनियों का हृदय बड़ा विशाल और सत्यवादी, स्पष्टवत में प्राप्त होता रहा है। महर्षि रेवक महान तपस्वी थे। ६१ वर्ष तक मौन धारण किया ६१ वर्ष तक उन्होंने निद्रा पान नहीं किया। उन्होंने कितना सुन्दर उत्तर दिया कि हे प्रभु! मैं इस प्रतिभा को अभी तक नहीं जानता क्योंकि इस

पर मैं अनुसन्धान कर रहा हूँ। बेटा! उनका हृदय कितना महान होता है। आज हम जितने सत्यवादी बन जाते हैं तो हमारा हृदय निर्मल और स्वच्छ बनने लगता है नाना छलों से रहित हो जाता है। बेटा! वह संस्कार स्वतः ही मानव के हृदय में नहीं व्यापते जिनसे मानव का आवागमन बनने लगता है। भारद्वाज ने महर्षि रेवक जी को प्रणाम किया और प्रणाम करते हुए वह महर्षि पिप्लाद ऋषि के आश्रम में प्रविष्ट हो गये। पिप्लाद मुनि ने कहा कि आइये, ऋषिवर! पधारिए। ऋषि ने विराजमान होकर वही प्रश्न किया। उन्होंने कहा कि प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि मानव के द्वारा ऐसा कौनसा सङ्कल्प है, ऐसा कौन सी प्रतिभा है जिससे आवागमन के संस्कार हमारे अन्तःकरण में प्रविष्ट न होने दें।

उस समय महर्षि पिप्लाद ने कहा कि भाई इस पर विचार विनिमय करेंगे। दोनों ऋषियों का विचार विनिमय प्रारम्भ होने लगा। उन्होंने कहा कि यदि ऐसा कोई कार्य है, तो वह जो आन्तरिक भावनाएं हैं उन आन्तरिक भावनाओं को इतना उज्ज्वल बनाया जाएं इतना पवित्र बनाया जाय कि जिस से यह संस्कार का जो नाना प्रकार का द्वेषवाद है, नाना प्रकार का जो रूढ़िवाद है, मस्तिष्कों में उसका संस्कार उत्पन्न न हो। हमें वह स्वप्नवत को भी प्राप्त नहीं होना चाहिए। महर्षि भारद्वाज बोले कि हे भगवन्! जब हम संसार में रमण करते हैं, नाना प्रकार की औषधियों का पान करते हैं हमारा प्राण इस वायु मण्डल में भ्रमण करता है, प्रकृति के गर्भ में हम आए हैं, माता अहिल्या की गोद में हम आए हैं तो नाना प्रकार के संस्कारों का जन्म होना स्वाभाविक हो जाता है। उन्होंने कहा प्रभु! इन कार्यों से मानव के द्वारा संस्कारों का जन्म नहीं होता है। संस्कारों का जन्म उस काल में होता है जबकि मानव उन विचारों पर जो इष्ट विचार हैं उन पर टिप्पणी करना प्रारम्भ कर देता है। टिप्पणी के साथ साथ उनमें घृणा होती है और घृणा के साथ ही में अभिमान होता है और अभिमान

के साथ में अपनी करूणामयी नहीं होती तो उस मानव के द्वारा उसके संस्कार जन्म ले लेते हैं। वह आवागमन का एक मूल कारण बनता चला जाता है।

देखो, इन्दियों का निग्रह ही अहिंसा परमोधर्म कहलाता गया है। सर्पराज आ गए चरणों के द्वार पर और उनके जपन जापन की क्रियाएं प्रारम्भ हैं जैसा उनका निग्रह है। महर्षि पातञ्जली जी ने कहा है कि चित्त वृत्ति निरोधय चित्त की वृत्तियों को निरोध करने का नाम योग कहलाया गया है, उसी का जापन चल रहा है परन्तु कितना महान तपस्वी! मृगराज आ गएं उनके द्वारा, उनके जपन को श्रवण कर रहे हैं। ऐसे महापुरूषों को मैं हृदय से प्रशंसा करता हूँ। उन तपस्वियों का वेद का विचार था, अहिंसा परमोधर्म वाला विचार है उनके द्वारा सदैव रमण करता रहता था।

पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा। इसको सोमरस का पान कराना चाहिए। बारह वर्ष के लिए मुझे सङ्कल्प करा दिया कि तुम सोमरस का पान करो। सोमरस क्या होता है? उसमें एक सुमेन नाम की औषधि होती है, सममुना नाम की औषध होती है, सेलखण्डा होती है, कोकजंघा होती है, सोमगागिनी होती है। नाना प्रकार की औषधियों का मानो अग्नि में तपा करके सोमरस बनाया जाता है। उसमें क्या प्रभाव होता है? यह मैं निर्णय करा देता हूँ, जो मुझे अनुभव हुआ है। उसमें यह होता है कि जो मन की गति है, जो संस्कारों को लाती है जो स्वप्न में मुझे सदैव बाध्य करती रही। उस समय अप्रतम ब्रह्म उसका पान कराने के पश्चात मेरे मन की गति संस्कारों की गति थी वह मन्द हो गई। मन्द हो जाने के पश्चात इसमें मेरी साधना में प्रवृत्ति हो गई।

पूज्यपाद गुरुदेवः हमारे ऋषियों ने कहा कि इन्द्रियों का रस लिया जाए। मानो इन्द्रियों का फेम का फेन बनाया जाए। ऐसा ऋषिजन कहते हैं परन्तु देखो इन्द्रियों का फेम क्या इन्द्रियों के विषयों को मन्थन करने के पश्चात जो जो इन्द्रियों में गुण हैं अथवा

जो जो उनका विषय है। उन विषयों को एकत्रित करने वाला ही साधक योग में पारायण बन सकता है। इनके विषयों को एकत्रित करने के पश्चात जब रस बनाया जाता है। उस रस को जो योगी पान कर लेता है। वह मन और प्राण दोनों का निरोध करके मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। हम इस प्रातःकाल की अमृत बेला में उस अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते हुए वेद की प्रतिभा को जानते हुए हम प्रकृति के मन को विचारते हुए हम अपने ऊपर अनुशासन करने का प्रयास करें। क्योंकि जब तक हमारे जीवन में अपने ऊपर अनुशासन नहीं होगा तो योग में कदापि भी ऊँचे नहीं बन सकेंगे।

मेरी इन्द्रियों का जो विषय है। उससे संसार को दृष्टिपात करना है। चंचलता में नहीं जाना है। इसको विचारना है कि मेरी नेत्रों की ज्योति में से कितनी धाराओं को जन्म होता है, और धाराएं क्या क्या कार्य करती हैं, जब रजोगुणी प्रवृत्ति होती है उस समय नेत्रों की धारा में अशुद्धवाद होता। जब सतोगुणी होता है। जब रजोगुण होता है। तो उसमें कितना रजोगुण होता है, तो ऋषिजन कहते हैं जब सात्विक प्रवृत्ति रहती है जो ३००७ प्रकार की धाराओं का जन्म होता है। परन्तु जब रजोगुणी होती है तो ६५५२ प्रकार की तरंगों का जन्म होता है। और जब तमोगुण होता है। उस समय मुनिवरो! मानव का सुकृत हनन होने लगता है। तमोगुणी प्रवृत्ति में तमोगुणी जो नेत्रों की ज्योति है उसमें लगभग ९००० तरंगों का जन्म होता है और उससे मानव का सुकृत हनन हो जाता है। परिणाम क्या कि इस विषय को विचारना है। नेत्र जब सात्विक प्रवृत्ति में होते हैं नेत्रों की ज्योति को विचारता है। वह नेत्रों की ज्योति अग्नि की धाराएं हैं। उन अग्नि की धाराओं को हमें आन्तरिक जगत् में समेट लेना है।

तप के द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध

सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके, वर्तमान के काल तक नाना विज्ञानवेत्ता हुए हैं, परन्तु

कोई विज्ञानवेत्ता ऐसा नही हुआ जो परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके और क्योंकि वे सीमा से रहित है और इसीलिए वे सीमा में आने वाले नही हैं, इसीलिए हमारे यहाँ परमपिता परमात्मा की महती अथवा उसकी अनन्तमयी ज्ञान और विज्ञान की महिमा का सदैव गुणगान गाते रहते हैं। क्योंकि वह हमारा पुरोहित है, और पराविद्या को देने वाला हैं। इसीलिए हम परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन करते रहते हैं, वह हमारा पुरोहित कहलाता रहता है। वेदमन्त्र हमें कुछ प्रेरित कर रहा हैं, क्योंकि मानव परम्परागतों से ही, प्रेरणा का स्रोत रहा है, और प्रेरणा को प्राप्त करता रहता हैं, तो आओ, वेदमन्त्र हमारा कहता है, वर्णनं ब्रव्हा कृतं देवाः क्या वह परमपिता रत्त प्रहा मानो वह सर्वज्ञ हैं, और उसकी सर्वज्ञता मुनिवरों! देखो, एक एक कण कण में व्याप्त हैं वह मानव देखो, ऐसे ओत प्रोत हो रहा है जैसे अन्तरिक्ष में मानो जितने लोक लोकान्तर है वह सब एक उस ब्रह्म सूत्र में पिरोए हुए से दृष्टिपात आते हैं, वह जो ब्रह्माण्ड है, अनन्तमयी ब्रह्माण्ड का वह स्वामीतव करने वाला है। मेरे प्यारे! मुझे वह काल पुनः से स्मरण आ रहा है। जब बेटा! बालक नाचिकेता यमाचार्य के द्वार पर आए, अपने में कुछ प्रश्न करना चाहता है, और बाल्य नाचिकेता ने कहा हे प्रभु! हम स्वर्ग की कामना करना चाहते हैं स्वर्ग में जाना चाहते हैं? तो मेरे प्यारे! देखो, यमाचार्य ने कहा ब्रह्मचारी तुम विराजमान हो जाओ, और शान्त की मुद्रा में मुद्रित हो करके, तुम मेरे वाक्यों को श्रवण करो। आज तुम देखो, स्वर्ग में जाना चाहते हो, तो स्वर्ग उसे कहते हैं, जहाँ मानव के गृह में गृह का संचालन होता हो, वह गृह स्वर्ग कहा जाता हैं। और विद्यालयों में जब ब्रह्मचारी और आचार्य दोनों विद्यमान हो करके, और वह अपने में उद्गीत गाते है, ब्रह्म की गाथा का वर्णन करते रहे हैं, तो वह स्वर्ग कहलाता हैं।

उन्होंने कहा कि तीन प्रकार की अग्नि हमारे समीप रहती है। एक अग्नि वह है जिसमें

ब्रह्मचारी तपता है, और द्वितीय अग्नि का नाम जिसमे गृहाश्रम तपा करता हैं। जैसे माता पिता पति पत्नी गृह में प्रवेश होते ही उनका जीवन तपों में प्रारम्भ होना है देखो, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा, तपं ब्रह्मा तपं ब्रव्हे राष्ट्रदं ब्रव्हा कृतं देवत्वां तपः कि ये संसार मानो तपोमय रहता हैं और बिना तप के मानव का जीवन प्रियता को प्राप्त नही होता। विचार आता है कि तप किसे कहते हैं? मेरे प्यारे! देखो, उस समय बालक नचिकेता ने यमाचार्य से कहा हे ब्रह्मचारी! ये संसार सर्वत्र मानो एक तपोमय निहित रहता है वायु वेग में तपायमान है, गतिवान बना रही हैं अग्नि अपनें में मानो देखो, तेजोमयी है, व तेजवान बना रही हैं, और वह जो तरलतव है वह तरल ब्रहे वह मानो देखो, आपो कहलाता हैं आपोमयी ज्योतिवान बना रहा हैं। मेरे प्यारे! देखो, प्रत्येक स्वरूप अपने में अपनेपन का ही भान कराता रहता है अपने में मानो वह उसी में प्रतिष्ठित हो जाता हैं तो विचार आता रहता हैं यमाचार्य ने कहा हे नाचिकेत! मानो तुम तीनो प्रकार की अग्नि का पूजन करो और तपोमय रहने के लिए सदैव तुम तत्पर रहो, क्योंकि संसार में प्रत्येक मानव तपायमान है, प्रत्येक मेरी पुत्री तपायमान रहती हैं परन्तु तपने के पश्चात मेरी पुत्री तपोमयी हो जाती हैं।

राष्ट्र जब ऊँचा बनता हैं जब राजा स्वयं तपस्वी होता हैं मानो देखो, मैं लंका को विजय करके आया हूँ और लंका में मैने नाना प्रकार की प्रतिष्ठ प्रहा मानो देखो, लंका में मुझे रजोगुण भी आया है, तमोगुण भी आया है, रजोगुण, तमोगुण मेरे अन्तःकरण में देखो, ग्रहण किए रहता हैं। हे प्रभु! मेरी इच्छा ये है कि मैं तपस्या करने के लिए जाऊं, और मैं बारह वर्ष के पश्चात अपने राष्ट्र को उन्नत बना सकता हूँ। क्योंकि यदि राजा मे तप नहीं हैं, तमोगुण से सना उसका अन्तर्हृदय है, वह हृदयग्राही नही होता हैं पवित्र नही होता हैं।

तो मेरे प्यारे! देखो, जब उन्होंने महाराज शिव को सम्बोधित हो करके कहा, क्योंकि

महाराज! शिव स्वयं तपस्वी रहते थे, और वे तपश्चर में रमण करके, अपने राष्ट्र को उन्नत बनाते थे इसी प्रकार राम भी यही चाहते थे, कि मैं राष्ट्र को ऊँचा बनाऊं।

तो मेरे प्यारे! देखो, मुझे स्मरण आता रहता है, भरत जी से कहा हे भरत! तुम अपने राष्ट्र को भोगो, उन्होंने कहा प्रभु! मैं इसको भोग नही सकता, ये भोगवाद की कोई वस्तु नही हैं यहाँ तो मानव को अपने कर्तव्य का पालन करना है, और राजा यदि कर्तव्यवादी नही बनेगा तो भगवन! देखो, राष्ट्रीयता नही कहलाती इसीलिए हे भरत! ब्रहे तुम स्वयं तपस्वी बनो। और भरत ने भी कहा प्रभु! आप तप के लिए जा रहे हैं, और मुझे राष्ट्र के लिए बाध्य कर रहे हैं, ये मेरे विचार में नही आ रहा हैं। हे भरत! वह ब्राह्मण जो होता हैं वह बिना तप और देखो, स्वर संगम के बिना ब्राह्मण ऊँचा नही बनता, और क्षत्रिय जब ऊँचा बनता है, जब वह अपने रजोगुण में तमोगुण की मानो देखो, वृत्तियाँ न आने दे। वह रजोगुण न्याय का वृत कहलाता हैं, उसके गर्भ में सत्य होता है, इसीलिए सत्य को ले करके ही तुम मानो देखो, अपने राष्ट्र को प्राप्त कर पालन करो। बेटा! मुझे ऐसा स्मरण आ रहा है, राम तपस्या के लिए चले गएं और वह भंयकर वनों में बेटा! देखो, भ्रमण करते हुए जब वनों में पंहुचे तो वहाँ वैश्म्पायन मुनि का दर्शन हुआ और देखो, उनके समीप विद्यमान हो गएं राम ने कहा प्रभु! मैं तप करने आया हूँ, मैं तप की मीमांसा को नहीं जान पा रहा हूँ, तप किसे कहते हैं? मेरे पुत्रों! देखो, महर्षि वैशम्पायन बोले हे राम! तुम्हें ये प्रतीत नही है, कि राजनं ब्रह्मे तपः ये तप किसे कहा जाता है। आहार का पवित्र सेवन करने का नाम तप है। क्योंकि उसी से हमारी प्रवृत्तियों को निर्माण होता हैं। और यदि अन्नाद उसका पवित्र है तो वहाँ प्रवृत्ति का ऊर्ध्वा में जन्म हो करके और मानव अपने में देखो, सतोगुण बन करके अपने सत में आधारित हो जाता है।

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने जब ये कहा कि तुम तप करो। परन्तु तप कहते हैं इन्द्रियों

के साकल्यों को जानने का नाम वही तप है जो इन्द्रियों के साकल्यों को जानता है अथवा इन्द्रियों के विषयों को जान करके अपना साकल्य बना करके बेटा! देखो, ज्ञान और उपार्जन करता है और ज्ञान का उपार्जन करके मानो देखो, हृदय रूपी यज्ञशाला में वह हूत कर रहा हैं प्रहूत कर रहा हैं वह भव्यता को प्राप्त हो रहा हैं।

विचार आता रहता है कि जब राम से ये वर्णन कराया वैशम्पायन ने कि तप ये है तो उन्होंने ये स्वीकार कर लिया। बेटा! देखो, वह कहीं खेचरी मुद्रा में चले जाते, कहीं प्राणायाम करने लगते। मुझे स्मरण हे छह माह तक उन्होंने देखो, वायुमण्डल के प्राण के संचय से बेटा! देखो, पोषक तत्त्वों को ग्रहण किया। और जब जल की इच्छा होती है योगेश्वर को तो बेटा! वहाँ देखो, वह खेचरी मुद्रा से मुनिवरों! शीतली प्राणायाम करता हुआ जल की तृप्ति कर लेता हैं।

मेरे प्यारे! देखो, योग साधना में जब मानव प्रवेश होता हैं तो साधक ये जानता है कि मुझे जितनी भी इन्द्रियों का साकल्य है नेत्रों साकल्य है, वह रूप हैं और देखो, श्रोत्रों का साकल्य शब्द है, और वाणी का, रसना का साकल्य मानो देखो, रस है, षट रस कहलाते हैं और त्वचा का जो वह मानो देखो, साकल्य है वह प्रेम है तो इसी प्रकार मेरे पुत्रों! देखो, घ्राण का जो मानो विषय है साकल्य है वह मुनिवरों! देखो, सुगन्ध कहलाती हैं तो इन सब साकल्यों को एकत्रित करके साधक मेरे प्यारे! देखो, अमृतं ब्रह्मणा वर्णस्सुतम् वह मेरे प्यारे! देखो, अपने हृदय रूपी यज्ञशाला में याग करता है और वह हृदय को पवित्र बना लेता हैं।

आओ, मेरे पुत्रों! मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नही देने आया हूँ विचार विनिमय केवल ये कि राम देखो, गायत्री छन्दों का पठन पाठन करने लगे, वाणी को पवित्र बनाने के लिए जैसे यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके स्वाहा स्वाहा की ध्वनि से ध्वनित हो जाता हैं अन्तरिक्ष में अपनी वाणी को प्रसारित कर देता हैं मेरे

प्यारे! उसी प्रकार राम ने गायत्री छन्दों का पठन पाठन किया और मुनिवरों! देखो, महर्षि वैशम्पायन से समय समय पर देखो, अन्न को ग्रहण करते रहे।

तो विचार आता रहता हैं मुनिवरों! देखो, अमृतं ब्रव्हे इसीलिए बालक नाचिकेता से आचार्य ने कहा हे नाचिकेता! यदि तुम्हें स्वर्ग को लाना है तो माता पिता को गायत्री छन्दों का प्रातःकालीन पठन पाठन करते हुए उनके अङ्ग संग रहने वाले जो बाल्य बालिका हैं, उनको श्रवण करते रहते हैं और जो माता पिता के सुन्दर विचार हैं तो देखो, बाल्यों के भी विचार सुन्दर बन जाते हैं वे भव्यता को प्राप्त हो करके अपने में रत्त हो जाते हैं।

मेरे पुत्रों! देखो, मुझे वह काल स्मरण आता रहता हैं जब भगवान राम ने इस प्रकार का बारह वर्ष का तप किया। उस अन्न को ग्रहण करते थे जिस अन्न में किसी का अधिकार नही था इसीलिए ऋषि मुनि को विवेक हो जाता है तो बेटा! उन्हें विवेक हो जाता हैं और विवेकी जो पुरूष होता हैं मानो उसमे विडम्बना नही होती और वह विडम्बना से पार होता हैं तो इसीलिए विडम्बिनित नही होना चाहिए। भगवान राम ने बेटा! देखो, बारह वर्ष का तप करने के पश्चात उन्होंने मेरे प्यारे! देखो, भयंकर वन को त्यागा। वह स्थली त्यागी जहाँ एक दूसरा एक दूसरे के शब्द एक दूसरे को मानो मानव को अपने को रत्त कर रहा हैं।

ये कैसा अनुपम जगत है पुत्रों! कैसी अनुपम धारणा है अरे, नाना प्रकार की मालाएं बनती है परन्तु माला भी सूत्र में पिरोई हुई हैं जैसे हमारा जीवन हैं मानो एक एक परमाणु मनका बन करके ब्रह्म सूत्र में पिरोया हुआ हैं या उसे आत्मसूत्र कह सकते हैं और उसमें पिरोते पिरोते बेटा! मानव कहाँ चला जाता हैं वाह रे मेरे प्यारे! इतना ऊर्ध्वा में साधक बन जाता है। वह साधना में परणित हो होता हुआ मुनिवरों! देखो, नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों की उड़ानें उड़ने लगता हैं। राम जैसे सखा बारह

बारह वर्षों तक मुनिवरों! देखो, रजोगुण, तमोगुण को शान्त करने में लगे रहेंगें मेरे पुत्रों! देखो, वह राष्ट्र पवित्रता को प्राप्त होता हैं।

सविता याग के द्वारा वायुमण्डल की पवित्रता

तो मुनिवरों! देखो, वह साधना के लिए सविता देव की उपासना करने लगे यज्ञमान कहता है कि हे सविता! देव! जिस आसन पर मैं वास करता हूँ, वह आसन मेरा हिंसा से रहित हो जाए, वह आसन मानो मैं मन, कर्म वचन से किसी प्रकार की हिंसा न करूं, मानो देखो, हिंसा का एक परमाणु भी न रह पाए। मेरे आश्रम को मानो मेरी वह तरंगे न छू पाएं तो ऐसा मुझे स्मरण आता रहता है, मुनिवरों! महर्षि लोमश जी ने जब ये उपदेश दिया तो कागभुषुण्ड जी अपने में याग करने लगे जब वो सविता देव के याग में परणित हो गए, सविता देव की उपासना करने लगे तो मुनिवरों! देखो, जहां तक उनकी वाणी जा रही थी, वाणी का वाक गमन कर रहा था, तो मुनिवरों! देखो, निकटतम आसन रहने वाला देखो, एक विद्यालय था, वहां महर्षि श्वेतकेतु रहते थे तो श्वेतकेतु के यहां से मुनिवरों! देखो, वह ब्रह्मचारियों के द्वारा वो अहिंसा देखो, विचार देखो, जब तरंगों में प्रवेश होने लगे तो जहां वो कागभुषुण्ड जी के आश्रम में वाणी जा रही थी तो वहां से वो तरंगें मानो उन तरंगों ने ऐसा गृहत किया, मुनिवरों! देखो, वह तरंगे स्वतः ही विद्यालय में प्रवेश हो गई। तो मेरे प्यारे! देखो, इसीलिए विद्यालय ऐसां ब्रह्मा देखो, आचार्य की वो सविता देव की याग के द्वारा वो जो तरंगे होती हैं, मानो देखो, मन मस्तिष्क जब एकाग्र होता है, और मन की तरंगों में जब तरंगे पवित्र होती हैं। तो जैसे विद्युत मुनिवरों! देखो, जैसे आगे शचि में प्रवेश हो जाती है, मुनिवरों! देखो, इसी प्रकार देखो, तरंगें भी उन्ही तरंगों को प्राप्त करती रहती हैं। जहां से उन तरंगों का प्रादुर्भाव हुआ था तो कागभुषुण्ड जी जब इस प्रकार याग कर रहे थे, तो कहीं से मानो भ्रमण करते हुए

मेरे पुरातन काल में ये वाक तुम्हें प्रगट भी किया कहीं से मुनिवरों! देखो, श्वेत ब्रह्मचारी भ्रमण करते हुए, जैसे याग कर रहे थे जैसे मानो याग में हूत करने लगे जब हूत करने लगे तो जैसे स्वाहा का उदगीत गाया जाने लगा तो आन्तरिक जो विचार थे, वे विचार स्वाहा के साथ में अग्नि की धाराओं पर जब विद्यमान हुए तो मानो देखो, उस आचार्य को कागभुषुण्ड जी को आह्वान कर रही हैं। वो तरंगे की जो देखो, ये हूत कर रहा है। ये हूत करता है, उसके हिंसक विचार बन गए हैं। ये तमोगुणी विचार हैं, इसके ये मानो देखो, कहीं सतोगुणी भावना को नष्ट कर रहा है, तो उसी समय मुनिवरों! देखो, कागभुषुण्ड जी अपने वेदमन्त्र सविता देव के शान्त कर दिए, और वे बोले नतमस्तिष्क हो करके हे आचार्य! तुम ये जो मानो मेरे याग में तुम्हारा सम्मलित होना है ये वास्तव में देखो, प्रियता नही हैं। ये प्रीति युक्त नहीं हैं। उन्होंने कहा प्रभु! ऐसा क्यों उन्होंने कहा कि मुझे ये आह्वान हो रहा है कि तुम्हारे विचार हिंसक बन रहे हैं तुम किसी को दण्डित करके आए हो, उन्होंने कहा हां प्रभु! ये तो है। उन्होंने कहा मुझे वे तरंगे मेरे अन्तःकरण को स्पर्श कर रही हैं, इसीलिए तरंगों में, तरंगों का जहां मिलान होता है, वही तरंगे मानो देखो, उसकी प्रतिभा में निहित हो जाती हैं, मैं अपनी साधना के लिए, आश्रम में मानो इस प्रकार का याग कर रहा हूँ, मैं ये सविता देव प्रभु से प्रार्थना कर रहा हूँ, कि मेरे आश्रम में कोई तरंग ऐसी अशुद्ध न आ जाए, जिससे उन तरंगों के द्वारा प्रायः मेरा विनाश अनिष्ट हो जाए और मैं अनिष्टता को प्राप्त हो करके, मैं अपने में अपनेपन को न विचार सकूं। मेरे प्यारे! देखो, कागभुषुण्ड जी ने याग शान्त कर दिया, और देखो, वह ऋषि वहां से उन्होंने नमस्कार करके, नमः हो करके वहां से ये स्वीकार करके कि वास्तव में मैंने त्रुटियां की हैं और मैं मानो देखो, मैं इसका क्षमा का पात्र हूँ। तो मुनिवरों! देखो, वहां से वो गमन करते हैं, और भ्रमण करके अपने आश्रम में जा पंहुचे,

कागभुषुण्ड जी मानो देखो, इतने में दोनों लोमश के आश्रम में जा पंहुचें, और लोमश मुनि से कहा भगवन! मेरा याग तो मानो भ्रष्ट पथ हो गया है। उन्होंने कहा ऐसा क्यों उन्होंने कहा देखो, ऋषि वृत्तिका का आगमन हो गया था और उन्होंने तमोगुण की तरंगों को वहां प्रसारित किया, उन्होंने लोमश जी ने कहा अरे, तुम्हारा तप ही क्या रहा? तुम्हारा सविता देव क्या है? जो मानो देखो, उनकी पाप तरंगों को वह दूरी न कर सकी, उन्होंने कहा देखो, प्रभु! ये तरङ्गे मानो देखो, मेरे अन्तःकरण को मानो उन्होंने स्पर्श किया है, उन्होंने कहा जाओ सविता की उपासना करो। मेरे प्यारे! वो सविता देवता का पुनः से याग प्रारम्भ करने लगे। उसमें समिधा भी, इसी प्रकार का साकल्य भी उसी प्रकार जिसे चरू कहते हैं, जिससे मानो साकल्य कहते हैं, और सङ्कल्प भी उसी प्रकार का होना चाहिए। मानो होतागण उसमें दूषित नही होने चाहिए। मेरे प्यारे! देखो, वो सविता देव पुनः से प्रगट हो गया। तो मेरे प्यारे! देखो, विचार आता रहता है, मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा प्रगट नही करूंगा। केवल ये तो विचार है क्योंकि सविता देव का अभिप्राय ये है कि हमारा जो देवताओं का धिपति है, वे सविता कहलाता है, मेरे प्यारे! देखो, मन की जितनी धाराएं हैं उनका जो नेतृत्व करने वाला है वह भी सविता देव कहलाता है इसीलिए तुम सविता की उपासना करो, मेरे प्यारे! देखो, कागभुषुण्ड जी ने लगभग मुनिवरों! देखो, एक सौ चौरनवें वर्ष तक उन्होंने लोमश जी के कथनानुसार उन्हीं के विचार, आज्ञा पा करके, उन्होंने इस प्रकार का तप किया। तप करने से उन्हें ये हो गया क्या मुनिवरों! देखो, तरंगे भ्रमण कर रही हैं और तरंगे जैसे जा रही हैं, उनके नेत्रों की ज्योति इतनी तीव्र बन गई हृदय का जब देखो, हृदय में आश्वान प्रकार का निर्माणित हो गया क्या मुनिवरों! देखो, तरंगे जा रही है। नेत्रों के समीप उन तरंगों में ये जान लिया जाता था इन तरंगों में किस प्रकार की तरंगें हैं, किस प्रकार का इसमें परमाणु और तरंगें भ्रमण

कर रही हैं मेरे प्यारे! देखो, इस प्रकार की तरंगों को जान लेते थे विचार आता रहता है बेटा! देखो, वे ब्रह्मणे व्रतं वे शान्त मुद्रा में देखो, विद्यमान थे प्राण और मन के ऊपर मानो देखो, मन को उन्होंने सविता देव से उन्होंने जकड दिया, वे सविता देव के बन्धन में बन्धन सूत्र जैसे अपने में देखो, सूत्रित हो जाते है। जैसे यज्ञमान के मङ्गलसूत्र में देखो, आचार्य उन्हें देखो,मङ्गल सूत्र में देखो, सूत्रित कर देता है, इसी प्रकार मुनिवरों! देखो, वे अपने में सविता देव से सूत्रित हो गए, वे इस सूत्र में उनका मन मस्तिष्क मानो उसमें ओत प्रोत हो गया। हे मानव! तू याज्ञिक बन और तू प्रत्येक दशा में अपनी आत्मा के अनुकूल क्रियाकलाप करता रह। वह तेरा सर्वोपरि एक याग है। हूत करना और वायुमण्डल को पवित्र बनाना, देवताओं को प्रदान करना देवताओं के लोक में क्योंकि हम रत्त रहते हैं।

वायुमण्डल को शुद्ध बनाओ।

2.योग दर्शन २.२९

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि यह (अष्टौ) आठ (अङ्गानि) योग के अङ्ग हैं।

3.योग दर्शन २.३०

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहा:, यमाः॥

अहिंसा - अहिंसा, सत्य - यथार्थ ज्ञान, अस्तेय अस्तेय (चोरी का अभाव), ब्रह्मचर्य - ब्रह्मचर्य (और), अपरिग्रहा: - अपरिग्रह (संग्रह का अभाव), यमाः - (ये पाँच) यम हैं। अहिंसा, यथार्थ ज्ञान, अस्तेय (चोरी का अभाव), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह(संग्रह का

अभाव) - ये पाँच यम हैं ।

4.योग दर्शन २.३५

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः ।

अहिंसा, प्रतिष्ठायाम्, तत्, सन्निधौ, वैर, त्यागः॥

अहिंसा अहिंसा (की), प्रतिष्ठायाम् दृढ़ स्थिति हो जाने पर, तत् उस (योगी के), सन्निधौ निकट, वर (सब प्राणी) वैरभाव, त्यागः त्याग कर देते हैं।

सत्य विचारों में सत्यता, परम सत्य में स्थित रहना। सत्य द्वितीय यम है। साधक मन,वचन और कर्म से सत्य जाने, सत्य माने, सत्य बोले और सत्य ही लिखे, मिथ्या असत्य न बोले, न मिथ्या व्यवहार ही करे। सत्यस्वरूप परमेश्वर को पाने के लिए साधक को सर्वथा सत्यनिष्ठ बनना होगा। सत्यस्वरूप प्रभु का साक्षात्कार करने के लिए उपासक को सत्य में ही जीना होगा, सत्यस्वरूप ही बनना होगा और सत्य के प्रति आंशिक नहीं सम्पूर्ण तथा सर्वोपरि लगाव रखना होगा। साधना की नींव रखने के लिए सत्यव्रती बनना अत्यावश्यक है। सत्य सबसे बड़ा व्रत है।

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।

सत्य, प्रतिष्ठायाम्, क्रिया, फल, आश्रयत्वम्॥

सत्य सत्य (में), प्रतिष्ठायाम् दृढ़ स्थिति हो जाने पर (उस योगी की), क्रिया क्रिया अर्थात् कर्म, फल फल के, आश्रयत्वम् आश्रय का भाव (आ जाता है) ।

सत्य के महत्त्व को समझकर जीवन में सत्य को धारण करो। सत्य में निवास करो। सत्य में मूर्त्तरूप बन जाओ। मन,वाणी और कर्म से सच्चे रहो।

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्॥

अस्तेय, प्रतिष्ठायाम्, सर्व, रत्न, उपस्थानम् ॥

अस्तेय अस्तेय अर्थात् चोरी के अभाव (में), प्रतिष्ठायाम् दृढ़ स्थिति हो जाने पर (उस

योगी के सामने), सर्व सब प्रकार के, रत्न रत्न, उप स्थानम् प्रकट हो जाते हैं। अस्तेय चोर प्रवृति का न हो, दूसरे द्रव्य को अपना न समझना।

5. योग दर्शन २.३८

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

ब्रह्मचर्य, प्रतिष्ठायाम्, वीर्य, लाभः॥

ब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्य (में), प्रतिष्ठायाम् दृढ़ स्थिति हो जाने पर, वीर्य सामर्थ्य (का), लाभः लाभ (होता है)॥

6. योग दर्शन २.३९

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथंतासंबोधः॥

अपरिग्रहः, स्थैर्ये, जन्म, कथन्ता, सम्बोधः ॥

अपरिग्रहः अपरिग्रह (के), स्थैर्ये दृढ़ प्रतिष्ठित हो जाने पर, जन्म पूर्वजन्म, कथन्ता कैसे हुए थे?

अपरिग्रह के दृढ़ प्रतिष्ठित हो जाने पर, पूर्वजन्म कैसे हुए थे ? इस बात का भलीभाँति ज्ञान हो जाता है। अपरिग्रह आवश्यकता से अधिक संचय नहीं करना और दूसरों की वस्तुओं की इच्छा नहीं करना।

7. योग दर्शन २.३२

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।

शौच, संतोष, तपः, स्वाध्याय, ईश्वर, प्रणिधानानि, नियमाः ॥

शौच बाह्य एवं अंत:स्वच्छता, संतोष संतुष्टि, तपः तप, स्वाध्याय स्वाध्याय (और) ईश्वर प्रणिधानानि ईश्वर शरणागति (ये पाँच) नियमाः नियम हैं।

बाह्य एवं अंत:स्वच्छता संतुष्टि तप स्वाध्याय और ईश्वर शरणागति ये पाँच नियम हैं। स्वाध्या आत्म चिंतन व मनन करना। ईश्वर प्रणिधान ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण, पूर्ण

श्रद्धा, ईश्वर को कण कण में दृष्टिपात करना।

8.योग दर्शन २.४०

शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः॥

शौचात्, स्व, अङ्ग, जुगुप्सा, परैः, असंसर्गः॥

शौचात् शौच के पालन से, स्व अपने, अङ्ग अंगों (में), जुगुप्सा वैराग्य (और), परैः दूसरों के साथ, संसर्गः संसर्ग न करने की भी फिर प्रवृत्ति नहीं रहती।

स्वामी सत्यपति परिव्राजक

शौच अर्थात् शुद्धि। शुद्धि दो प्रकार की होती है। एक बाह्य और दूसरी आन्तरिक। शरीर, वस्त्र, स्थान, पात्र शुद्ध रखना और धन, सम्पत्ति को न्यायपूर्वक उपारजित करना शुद्धि है। अविद्या, मिथ्याभिमान, राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से दूर रहना आन्तरिक शुद्धि है। बाहर की शुद्धि न्यून परिश्रम साध्य है और आन्तरिक अधिक परिश्रम साध्य है।

9.योग दर्शन २.४२

संतोषादनुत्तमसुखलाभः॥

संतोषात्, अनुत्तम, सुख, लाभः॥

संतोषात् संतोष (से), अनुत्तम परम, सुख सुख, लाभः प्राप्त (होता है)। संतोष से परम सुख प्राप्त होता है ।

सम्पूर्ण पुरुषार्थ जो उपलब्धि हो उससे सन्तुष्ट रहना।-स्वामी सत्यपति परिव्राजक

व्याख्याः श्रृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज

जाति-आयु-भोग

पूज्य महानन्द जीः क्या भगवन! मैं यह जानना चाहता हूँ आपको इतना औषध विज्ञान का एक विशाल वर्णन कर रहे हैं परन्तु जैसा हमारे यहाँ पातञ्जलि जी ने कहा है

आयु और जाति और भोग यह पूर्वले जन्म के संस्कारों से प्राप्त होते हैं तो क्या औषधियों से आयु इतनी दीर्घ बना ली जाती है या वैसे ही उच्चारण कर रहे हैं। मेरे विचार में यह नही आ रहा है, क्योंकि जब आयु जाति और भोग यह पुनः पूर्वले जन्म के संस्कार से पातञ्जलि जी कहते हैं आप इसके विपरीत तो नही जा रहे हैं

पूज्यपाद गुरुदेवः बेटा! इसमें कोई विपरीतता नही है क्योंकि मानव के आयु और जाति और भोग यह वाक विशुद्ध है, और यथार्थ है। परन्तु आयु और जाति का इस कायाकल्प से कोई सम्बन्ध नही मिलता हैं क्यों नही बनता इसका सम्बन्ध इसीलिए नही है, क्योंकि जैसे हमे आयु प्राप्त हुई है आयु हमें श्वासों के ऊपर प्राप्त हुई है। अब हमारा जो श्वांस है वह हमारा समाप्त हो गया है अब देखो, उसके पश्चात हमारे शरीर का अन्त होना है। परन्तु यदि श्वांस की गतियां रह रही हैं, तो यह जो प्राण शक्ति है और प्राण वर्धक जो औषध है उनका पान करने से हमारे श्वांस धीमे बन करके हमें पुनः मानो श्वासों की प्रतिभा प्राप्त हो जाती है इसी प्रकार यह सिद्धान्त तो नही शान्त हुआ, परन्तु रहा यह कि आयु जाति मानो आयु का निदान तो इसीलिए हो गया रहा जाति कि हम मनुष्य बनेंगें पशु बनेंगें क्या है? भिन्न भिन्न जातियां है, परन्तु रहा भोग की वार्ता क्या मानव का शरीर भोगों से प्राप्त होता है, या श्वासों से प्राप्त होता है, यह प्रश्न बन जाता है, परन्तु उसका उत्तर यह है कि भोग और श्वासों का दोनो का समन्वय हो जाता है। जब दोनों का समन्वय होता है, तो आयु और भोग श्वांस प्रहे श्वांस की गति प्राण और देखो, वह भोगवाद मानव के समीप रहता है, तो भोगवाद की सूक्ष्मता होती रहती है, जैसे एक मानव को बालक को हमने आहार करने की कोई वस्तु प्रदान की वह उसको धीमे धीमे पान करता है, तो उसको बहुत दीर्घ समय लगता है, परन्तु उसे एक ही समय चट कर दिया जाता है, अपने में भक्षण कर लेता है। तो मानो उसे कई गुणे समय में वह वस्तु को समाप्त करता

है इसी प्रकार भोगवाद का यह विवाद है, भोगवाद की यह विशेषता है, क्या हम भोगवाद को हम धीमे धीमे मानो हम शुभ कर्म करते हुए भोगते हैं। शुभ कर्मों में संलग्नता होती है, तो वही भोग मानो हमारे मोक्ष के लिए मोक्ष का निकटतव का समन्वय बन जाता है। मानो देखो, वही प्राण शक्ति जो प्राणों से हम भोगों से आयु और मानव के जीवन की स्थिरता स्वीकार करते हैं। उसका मानो देखो, उसका दोनों का समन्वय धीमे धीमे हो जाता है, यदि हम नाना प्रकार के जो अभक्ष्य पदार्थों का पान करते रहते हैं, जैसे एक मानव ने तीक्ष्ण पदार्थों का पान किया जैसे मानो एक मानव ने रक्त का पान किया है। उसको अपनी रसना का स्वादन बनाया है, दूसरों के गर्भों को पान करने के लिए अपनी वासना की पूर्ति करने के लिए वह केवल जब इतना क्रियाकलाप करता है, तो वह अपने भोगों को वह मानो भोगों में एक प्रकार का विष आभा को उत्पन्न कर रहा है, जैसे विष की एक बेल उत्पन्न हो जाती है। मानो देखो, दूसरे भोगवाद का जन्म हो जाता है, क्योंकि उसकी वासना की तरंगें विशेष बन जाती हैं। जैसे एक परमात्मा ने एक औषध को नियुक्त किया है, रूग्णों में क्रियाकलाप में आती है, उस तीक्ष्ण औषध को मानो देखो, मानो देखो, अपने शरीर के पोषण के लिए परणित करने लगता है। तो उससे आयु उसकी सूक्ष्म बन जाती है, इसी प्रकार देखो, मांस भक्षण करने वाले की आयु में सूक्ष्मता आ जाती है। यदि उसमें ऐसे तीक्ष्ण पदार्थों का मिश्रण करता है, तो और आयु सूक्ष्म बन जाती है। परन्तु मैंने जैसे अभी अभी तुम्हें नाना प्रकार की औषधियों के निदान का वर्णन किया है, इनको पान करते रहोगे तो वह शुभ कर्म भी है। विचारधारा भी विचित्र है, ब्रह्म का चिन्तन भी होता है, और ब्रह्म के चिन्तन के साथ में वासना की हमें शान्ति होती है। वह जो ऊर्ध्वा शक्ति है एक ही मार्ग से हो करके जाती है, वह जल के सदृश्य रहती है, और जल के सदृश्य रह करके मानो देखो, वह जितनी भी शीतलता

हमारी मानो ऊर्ज्वा शक्ति जहाँ से शान्त होती है, और निकल जाती है, जितनी वह शीतलता में रहेगी, विचारों में परणित रहेगी, मन उतना शान्त बुद्धि उतनी विचित्र मानो तार्किक बनी रहेगी। ब्रह्म के चिन्तन में लगी रहेगी, उतना ही मानव का शुभ कर्म और देखो, वह श्वांस भी धीमा हो जाएगा, और वह जो तुम्हारा भोगवाद है वह भी शनै शनै तुम्हें वह भोगवाद धीरे धीरे सूक्ष्म बनता रहता है। जैसे एक बहुत बड़ा स्थूल है, उस स्थूल को हम अग्नि में तपाते रहते तपाते रहते हैं, तपाते रहते हैं, एक समय वह आता है कि उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार जैसे मानो देखो, हम स्थूल हमारा कर्म है देखो, अशुभ कर्म है, यदि हम देखो, उसको हम शुभ कर्मों की बौछार देते रहेंगे ज्ञान रूपी अग्नि की तरंगों में उसे तपाते रहेंगें तो बेटा! वह सूक्ष्म होता होता तो मानो एक समय वह आयेगा क्या हमारी दीर्घ आयु बन जाएगी प्राण शक्ति हमें पुनः प्राप्त हो जाएगी सङ्कल्प शक्ति के द्वारा और मानो देखो, वह भोगवाद सूक्ष्म बन करके उसको हम भोग भी सकते हैं और वह हमें प्रतीत भी नही होगा। तो इस प्रकार देखो, बेटा! औषध विज्ञान मानो देखो, जिसके ऊपर मैं इसलिए विशेष टिप्पणी नही देना चाहता हूँ केवल विचार यह तुम्हारे आङ्गन में आ गया होगा, क्या यह जो तुम्हारा वैदिक सिद्धान्त हैं, जो हमारे क्रियाकलाप मानो देखो, अन्तरात्मा की वृत्तिका और वह ऐसा उच्चारण करती रहती है।

10. योग दर्शन २.१३

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः॥

सति , मूले , तत् , विपाकः , जाति , आयु , भोगाः ॥

मूले - मूल के, सति - विद्यमान रहने तक, तत् - उस (कर्माशय का), विपाकः – परिणाम, जाति - जन्म, आयुः - आयु (और), भोगाः - भोग (के रूप में प्राप्त होता

रहता है)। मूल के विद्यमान रहने तक उस कर्माशय का परिणाम जन्म, आयु और भोग के रूप में प्राप्त होता रहता है।

11. योग दर्शन २.२९

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ अङ्ग हैं।

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द जी

यमनियमासन०) यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि यह (अष्टौ) आठ (अङ्गानि) योग के अङ्ग हैं।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्णदत्त जी महाराज

देखो, यम नियम में प्रायः यह आता है कि सबसे प्रथम योग के लिए हमारा आहार शुद्ध होना चाहिए आज इस मानव का आहार सुन्दर नही हो, शुद्ध और पवित्र नही हो तो आज यौगिक प्रक्रिया में लाना यह देखो, अस्वाभाविक तथा असम्भव मुझे प्रतीत होता है मुझे स्मरण होता रहता हैं केवल अनुभव भी किया हैं माकुतम देखो, योगी बहुत समय के पश्चात मानो साधना में परणित होता रहता हैं सोमरसों का पान कराया जाता है। यह क्या आज मैं प्रथमे ब्रह्मे लोकाः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि हे पुत्र संसार में सुन्दर तो कोई कोई होता हैं यों तो संसार में व्यक्तव्य देने वाले विचार विनिमय करने वाले संसार में बहुत हुआ करते हैं।

तो हे भगवन! हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव आज मैं यौगिक वाक्य प्रकट करने नही जा रहा हूँ केवल अपने विचार इसीलिए व्यक्त किए है कि यह जो आज का जगत है। यह इतना पृथकता मे क्यों परणित हो रहा है इसीलिए हो रहा है क्योंकि अध्ययन सूक्ष्मता होने के नाते ओर विचार की सूक्ष्मता होने के नाते विचार नही रहा अध्ययन

नही रहां यम नियम के पालन नही रहे।

जो मानव यम नियम का पालन करने वाला नही होता, प्राणायाम की गति जिसकी गति नही होती, उसका हृदय मानवता तपी हुई नही होती, तो वह मानव संसार में योगी नही कहलाया जाता।

मुनिवरों! मुझे स्मरण आता रहता है जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव आश्रम में प्रविष्ट होते थे उस समय पूज्यनीय गुरुदेव प्रकट कराते थे कि संसार में महापुरुष कोई कोई होता है। उन महापुरुषों में भी आत्मा को जानने वाला कोई कोई होता है। आत्मवेत्ता में भी पूज्यपाद कोई कोई होता है। परन्तु देखो, ऐसा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कई काल में वर्णन कराते हुए कहा था।

सारी रात्रि ब्रह्म का चिन्तन चलता रहता था वेदों का अध्ययन प्रारम्भ रहता था क्योंकि वेद की परम्परा को नष्ट करने के पश्चात कोई संसार में यह चाहता है कि मैं आज यौगिकवाद प्रक्रिया में ला सकता हूँ तो यह मानव का असम्भव विचार रहा हैं क्योंकि मुझे संसार का अनुभव है वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्रायः यह है कि हमारे जो वैदिक पद्धति है वैदिक जो यम नियमों का पालन करना है यह मानव के लिए, साधको के लिए बहुत अनिवार्य हैं।

12. यजुर्वेद ७.२५

ओ३म् उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि ध्रु॒वो॒ऽसि ध्रु॒वक्षि॑तिर्ध्रु॒वाणां॑ ध्रु॒वत॒मोऽच्यु॑तानामच्युत॒क्षित्त॑मऽए॒ष ते॒ योनि॑र्वैश्वान॒राय॑ त्वा। ध्रु॒वं ध्रु॒वेण॒ मन॑सा वा॒चा सोम॒मव॑नयामि। अथा॑ न॒ऽइन्द्र॒ऽइद्वि॒शोऽसप॒त्नाः सम॑नस॒स्कर॑त्॥

पदार्थः महर्षि दयानन्द

पदार्थः हे परमेश्वर! आप (उपयामगृहीतः) शास्त्र प्राप्त नियमों से स्वीकार किये जाते (असि) हैं। ऐसे ही (ध्रुवः) स्थिर (असि) हैं कि (ध्रुवक्षितिः) जिन आप में भूमि स्थिर हो रही है और (ध्रुवाणाम्) स्थिर आकाश आदि पदार्थों में (ध्रुवतमाः) अत्यन्त स्थिर (असि) हैं तथा (अच्युतानाम्) जगत् का अविनाशी कारण और अनादि सिद्ध जीवों में

(अच्युतक्षित्तमः) अतिशय करके अविनाशीपन बसाने वाले हैं। (एषः) यह सत्य के मार्ग का प्रकाश (ते) आप के (योनिः) निवास-स्थान के समान है। (वैश्वानराय) समस्त मनुष्यों को सत्य मार्ग में प्राप्त कराने वाले वा इस राज्यप्रकाश के लिये (ध्रुवेण) दृढ़ (मनसा) मन और (वाचा) वाणी से (सोमम्) समस्त जगत् के उत्पन्न कराने वाले (त्वा) आप को (ध्रुवम्) निश्चय पूर्वक जैसे हो वैसे (अवनयामि) स्वीकार करता हूं। (अथ) इसके अनन्तर (इन्द्रः) सब दुःख के विनाश करने वाले आप (नः) हमारे (विशः) प्रजाजनों को (असपत्नाः) शत्रुओं से रहित और (समनसः) एक मन अर्थात् एक दूसरे के चाहने वाले (इत्) ही (करत्) कीजिये॥

13. न्याय दर्शन ४.२.४६

तदर्थं यमनियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्मविध्युपायैः ।

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

योगशास्त्र के विध्यनुसार यम नियमादि आठ अंगों के द्वारा आत्म संस्कार करना चाहिए।

14. मनुस्मृति ४.२०४

यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधैः । यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ॥

पदार्थः स्वामी सत्यपति परिव्राजक

यमों का सेवन नित्य करे, केवल नियमों का नहीं क्योंकि यमों को न करता हुआ और केवल नियमों का सेवन करता हुआ भी अपने कर्त्तव्य से पतित हो जाता है। इसलिये यम सेवन पूर्वक नियम सेवन नित्य किया करे।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

देखो, यम नियम में प्रायः यह आता है कि सबसे प्रथम योग के लिए हमारा आहार शुद्ध होना चाहिए आज इस मानव सुन्दर नही हो शुद्ध और पवित्र नही हो तो आज यौगिक प्रक्रिया में लाना यह देखो, अस्वाभाविक तथा असम्भव मुझे प्रतीत होता है

मुझे स्मरण होता रहता हैं केवल अनुभव भी किया हैं देखो, योगी बहुत समय के पश्चात मानो साधना में परणित होता रहता हैं सोमरसों का पान कराया जाता है। यह क्या आज मैं प्रथमे ब्रह्मे लोकाः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि हे पुत्र संसार में सुन्दर तो कोई कोई होता हैं यों तो संसार में व्यक्तव्य देने वाले विचार विनिमय करने वाले संसार में बहुत हुआ करते हैं परन्तु विचारक, अनुसन्धान करने वाला अपना विचार आत्मिक में हृदय गम्भीरता में परणित करता है मानव के लिए असम्भव नही होता तो पूज्यपाद गुरुदेव मुझे बहुत बहुत सुन्दर वार्ता प्रकट कराते रहते हैं।

इसीलिए हो रहा है क्योंकि अध्ययन सुक्ष्मता होने के नाते और विचार की सूक्ष्मता होने के नाते विचार नही रहा अध्ययन नही रहा यम नियम के पालन नही रहे।

जो मानव यम नियम का पालन करने वाला नही होता, प्राणायाम की गति जिसकी गति नही होती, उसका हृदय मानवता तपी हुई नही होती, तो वह मानव संसार में योगी नही कहलाया जाता।

15. योग दर्शन २.३०

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।

अहिंसा , सत्य , अस्तेय , ब्रह्मचर्य , अपरिग्रहाः , यमाः॥

अहिंसा - अहिंसा, सत्य - यथार्थ ज्ञान, अस्तेय – अस्तेय (चोरी का अभाव), ब्रह्मचर्य - ब्रह्मचर्य (और), अपरिग्रहाः - अपरिग्रह (संग्रह का अभाव), यमाः - (ये पाँच) यम हैं।

अहिंसा, यथार्थ ज्ञान, अस्तेय(चोरी का अभाव), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह(संग्रह का अभाव) - ये पाँच यम हैं ।

16. यजुर्वेद ३६.१८

ओ३म् दृते दृꣳहं मा मित्रस्यं मा चक्षुंषा सर्वांणि भूतानि समींक्षन्ताम्। मित्रस्याऽहं चक्षुंषा सर्वांणि भूतानि समींक्षे। मित्रस्य चक्षुंषा समींक्षामहे॥

पदार्थः महर्षि दयानन्द

हे (दृते) अविद्यारूपी अन्धकार के निवारक जगदीश्वर वा विद्वन्! जिससे (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणी (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (मा) मुझको (सम्, ईक्षन्ताम्) सम्यक् देखें (अहम्) मैं (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (सर्वाणि, भूतानि) सब प्राणियों को (समीक्षे) सम्यक् देखूं, इस प्रकार सब हम लोग परस्पर (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (समीक्षामहे) देखें इस विषय में हमको (दृंह) दृढ़ कीजिये॥

17. योग दर्शन २.३५

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः ।

अहिंसा, प्रतिष्ठायाम्, तत्, सन्निधौ, वैर, त्यागः॥

अहिंसा अहिंसा (की), प्रतिष्ठायाम् दृढ़ स्थिति हो जाने पर, तत् उस (योगी के), सन्निधौ – निकट, वर (सब प्राणी) वैरभाव, त्यागः त्याग कर देते हैं।

सत्य विचारों में सत्यता, परम सत्य में स्थित रहना। सत्य द्वितीय यम है। साधक मन,वचन और कर्म से सत्य जाने, सत्य माने, सत्य बोले और सत्य ही लिखे, मिथ्या असत्य न बोले, न मिथ्या व्यवहार ही करे। सत्यस्वरूप परमेश्वर को पाने के लिए साधक को सर्वथा सत्यनिष्ठ बनना होगा। सत्यस्वरूप प्रभु का साक्षात्कार करने के लिए उपासक को सत्य में ही जीना होगा, सत्यस्वरूप ही बनना होगा और सत्य के प्रति आंशिक नहीं सम्पूर्ण तथा सर्वोपरि लगाव रखना होगा। साधना की नींव रखने के लिए सत्यव्रती बनना अत्यावश्यक है। सत्य सबसे बड़ा व्रत है।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

ऐसा मनोहर वेदों का गान मुनिवरों! आज तो बेटा! कुछ उच्चारण करने का समय नहीं, कोई समय था बेटा! जब इस वेद गान को हृदय से गाया जाता था तो मार्ग में विचरने वाले मृगराज भी चरणों में ओत प्रोत हो जाया करते थे। मैंने आज से पूर्व

काल में, अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा था कि हे पूज्यपाद! यह मृगराज आपके चरणों में है, इसका क्या कारण है? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा था कि हे पुत्रवत्! मेरे चरणों में यह मृगराज और पक्षीगण सब शान्त है, इनका मूल कारण यह है कि जब आत्मा में इतना बल होता है, आत्मा इतनी बलिष्ठ होती है तो हिंसक प्राणी भी, अहिंसावादी बन जाता है, वह अहिंसावादी बन जाता है। अहिंसावादी बन करके अपने हिंसक पने को त्याग देता है। मेरे प्यारे! आज से लाखों वर्षों पूर्व मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे निर्णय कराया। यह वह मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अमूल्य आदेश दिया करते थे। बारम्बार यज्ञ की धारा चलती थी अन्तरिक्ष में।

मुनिवरों! जहाँ मेरे पूज्यपाद का आश्रम था आश्रम में उस महान वाणी से, उस विद्या से सुशोभित आश्रम था। जैसे मुनिवरों! वृक्ष के पुष्प आ जाते हैं, या फल वाले वृक्ष पर फल आ जाते हैं और वह वृक्ष फलों से सुशोभित रहता है, इसी प्रकार मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के सदाचार और सतोगुण से आश्रम परिबद्ध रहता था, जिससे मृगराज भी बेटा! उस महानता के इच्छुक रहते थे, पक्षीगण भी शान्त थे, मानव कोई चला जाता तो उसका हृदय भी पवित्र हो जाता था।

तो मेरे भोले आचार्यजनों! आज का हमारा वेद पाठ क्या क्या कह रहा था। मैं संक्षेप से वार्ता प्रकट करता चला जाऊंगा। इतना समय नहीं कि विस्तार से इन वेद मन्त्रों को प्रकट कराए। आज के वेदमन्त्र का मूल क्या था कि संसार में अहिंसा परमोधर्म का पालन करना चाहिए। जब संसार में मानव अहिंसा परमोधर्म का पालन करता है तो पवित्र होता चला जाता है जो मानव दूसरे जीवों को भक्षण करने वाला होता है उसका अन्तःकरण कदापि भी पवित्र नहीं बन सकता। मानव में अहिंसा परमोधर्म की भावना होनी चाहिए। अहिंसा परमोधर्म किसे कहते हैं इसको जान लेना चाहिए। अहिंसा परमोधर्म आत्मिक बल को कहते हैं। शुद्ध आहार और व्यवहार को कहते हैं

कटुता को नष्ट करने को इन सभी को विचारने को हमारे यहाँ अहिंसा परमोधर्म कहते हैं।

18. यजुर्वेद १.५

ओ३म् अग्नें व्रतपते व्रतं चंरिष्यामि तच्छंकेयं तन्में राध्यताम्। इदमहमनृंतात् सत्यमुपैंमि॥

भाषार्थःमहर्षि दयानन्द

हे (व्रतपते) सत्यभाषण आदि धर्मों के पालन करने और (अग्ने) सत्य उपदेश करने वाले परमेश्वर! मैं (अनृतात्) जो झूंठ से अलग (सत्यम्) वेदविद्या, प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, सृष्टिक्रम, विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारों से जो निर्भ्रम, सर्वहित, तत्त्व अर्थात् सिद्धान्त के प्रकाश करनेहारों से सिद्ध हुआ, अच्छी प्रकार परीक्षा किया गया (व्रतम्) सत्य बोलना, सत्य मानना और सत्य करना है, उसका (उपैमि) अनुष्ठान अर्थात् नियम से ग्रहण करने वा जानने और उसकी प्राप्ति की इच्छा करता हूं। (मे) मेरे (तत्) उस सत्यव्रत को आप (राध्यताम्) अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिये जिससे कि (अहम्) मैं उक्त सत्यव्रत के नियम करने को (शकेयम्) समर्थ होऊं और मैं (इदम्) इसी प्रत्यक्ष सत्यव्रत के आचरण का नियम (चरिष्यामि) करूंगा॥

19. योग दर्शन २.३६

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।

सत्य, प्रतिष्ठायाम्, क्रिया, फल, आश्रयत्वम्॥

सत्य सत्य (में), प्रतिष्ठायाम् दृढ़ स्थिति हो जाने पर (उस योगी की), क्रिया क्रिया अर्थात् कर्म, फल फल के, आश्रयत्वम् आश्रय का भाव (आ जाता है) ।

सत्य के महत्त्व को समझकर जीवन में सत्य को धारण करो। सत्य में निवास करो। सत्य में मूर्त्तरूप बन जाओ। मन,वाणी और कर्म से सच्चे रहो।

20. मुण्डकोपनिषद ३.१.५

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा।

पदार्थः परमात्मा सत्य और तप से ही प्राप्त होता है।

21. मुण्डकोपनिषद ३.१.६

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः । येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

(सत्यमेव जयति) सत्य कर्म करने से ही मनुष्य मुक्ति को प्राप्त कर सकता है (न) नहीं (अनृतम्) झूठ की जय नहीं होती (सत्येन) सत्य से (पन्थाः) मार्ग जिस पर मनुष्य चल रहे हैं (विततः) फैला हुआ है (देवयानः) वेदों के जाननेवाले देवतों के कर्म का मार्ग (येन) जिस मार्ग से (आक्रमन्ति) परस्पर में उत्साह से चलते हैं (ऋषयः) वेदों के अर्थ के ठीक ठीक जानने वाले ज्ञानी (हि) निश्चय करके (आप्तकामाः) जिन्होंने अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर ली है, जिस दिशा में (यत्र) जहां पर (तत्) वह (सत्यस्य) सत्य कर्म करने का (परमम्) अत्यन्त सुन्दर (निधानम्) अन्तिम सीमा है।

22. मनुस्मरति ८.८१

सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन् साक्षी लोकान् आप्नोत्यपुष्कलान् । इह चानुत्तमां कीर्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता ॥

पदार्थः डा. सुरेन्द्र शर्मा

(साक्षी) जो साक्षी (सत्यं ब्रुवन्) सत्य बोलता है (पुस्कलान् लोकान+आप्नोति) वह जन्मान्तर में उत्तम जन्म और उत्तम लोक लोकान्तरों में जन्म को प्राप्त होके सुख भोगता है (इह च+ अनुत्तमां कीर्तिम्) इस जन्म वा परजन्म में उत्तम कीर्ति को प्राप्त होता है (एषा वाक् ब्रह्मपूजिता) क्योंकि जो वह वाणी है वही वेदों में सत्कार और तिरस्कार का कारण लिखी है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्णा दत्त जी महाराज

मैंने बेटा! सबसे प्रथम शब्दों से अहिंसा की घोषणा की है। अहिंसा के बाद सत की घोषणा की है। सत किसे कहते हैं। बेटा! सत को विचारना है। ऋषियों ने तो यह

कहा है सत्य को उच्चारण करने वाले पुरुषों ने कहा है कि सत्य ही ब्रह्म है, सत्य ही जगत है। तो हमें सत्य को विचारना है। सत्य का कदापि भी अभाव नहीं होता। अहिंसा के पश्चात सत्य आता है। सत्य क्यों आता है? क्योंकि अहिंसा सिद्ध होने पर सत्यं स्वतः हो आ जाता है। सत्य वह है जिसमें निस्वार्थता होनी चाहिए। वाक्य उच्चारण करता है परन्तु वह सत्य इस प्रकार का हो कि सत्य में सत्य में कोई रहस्य होना चाहिए। मानो वह सत्य कभी असत्यतता में परणित हो जाता है। जिस सत्य के उच्चारण करने से कोई लाभ न हो। मानो उसमें अपमान हो। ऐसे सत्य के उच्चारण करने से अपमान होता है। वह भी सत्य मानव को असत्यता में परणित करने वाला होता है। तो हमें सत्य को सिद्ध करना है। सत्य क्या है? तो ऋषि कहते हैं कि सत्यं ब्रह्मः यापक प्रवेः। अर्थात सत्य ही ब्रह्म है। जो प्रकृति के कण कण में व्याप्त हो रहा है। वही सत्य माना गया है।

ब्राह्मण उसे कहते हैं जो ब्रह्म में चरता है, सत्यवादी होता है क्योंकि सत में ही ब्रह्म ओत प्रोत रहता है। जहाँ सत होता है वहीं ब्रह्म होता है।

मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! यहाँ आचार्यों का सिद्धान्त मुझे स्मरण है, एक समय बेटा! देखो, राजा रावण ने प्रातः काल में महर्षि प्रात जी महाराज के द्वारा ब्रह्मा के द्वारा जब अध्ययन किया था, तो वाणी से सबसे प्रथम अध्ययन किया था बेटा! वाणी शब्दों का अध्ययन करने वाला उस शब्द की गति इतनी होती है, क्या एक योगी यह चाहता है, शब्दो का संशोधन करता हुआ अहा! शब्दो पर अनुसन्धान करने वाला एक योगी यह चाहता है कि शब्द की अग्नि से ये अमुक मानव भस्म हो जाए तो वह भस्म हो जाता है। परन्तु देखो, यह मानव की वाणी में शक्ति मानी गई है। आचार्यों ने कहा है, वेद का ऋषि कहता है कि शब्द ही तो अग्नि है इस पिण्ड में शब्द ही तो अग्नि है। इसीलिए देखो, इस अग्नि के ऊपर अनुसन्धान करना चाहिए, वाणी का

आज मेरी प्यारी माता जब वाणी से जब यथार्थ वाक उच्चारण करती है तो बेटा! यह महानता की ज्योति जाग्रत हो जाती है। मेरे मानव बेटा! ऋषिजन मुझे स्मरण आता है, बेटा! देखो, महर्षि भारद्वाज ने, अनुसनधान किया और दो सौ वर्ष तक सत्य का पालन करके निश्चय किया, गौरव के सहित उन्होंने यह कहा है क्य मानव के सत्य वाक उच्चारण करना शब्द का विचार करके उच्चारण करना चाहिए, क्योंकि शब्द में एक महान अग्नि होती है, पवित्र अग्नि होती है।

23. यजुर्वेद ४०.१

तेन॑ त्य॒क्तेन॑ भुञ्जीथा॒ मा गृ॑धः॒ कस्य॑ स्वि॒द्धन॑म्॥

पदार्थः (तेन) उस (त्यक्तेन) त्याग किये हुए जगत् से (भुञ्जीथाः) पदार्थों के भोगने का अनुभव कर (किंच) किन्तु (कस्य, स्वित्) किसी के भी (धनम्) वस्तुमात्र की (मा) मत (गृधः) अभिलाषा कर॥

24. योग दर्शन २.३७

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्॥

अस्तेय, प्रतिष्ठायाम्, सर्व, रत्न, उपस्थानम् ॥

अस्तेय अस्तेय अर्थात् चोरी के अभाव (में), प्रतिष्ठायाम् दृढ़ स्थिति हो जाने पर (उस योगी के सामने), सर्व सब प्रकार के, रत्न – रत्न, उप स्थानम् प्रकट हो जाते हैं। अस्तेय चोर प्रवृति का न हो, दूसरे द्रव्य को अपना न समझना।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

तो बेटा! मानव के जीवन में तृतीय लक्ष्य अस्तेय आता है कि हम मन, कर्म और वचन से मिथ्या भी न हों। मन कर्म वचन हमारा एक तुल्य होना चाहिए। मेरे प्यारे! हम स्वप्न में भी किसी प्रकार की अशुद्ध कल्पना न करें। उसको मुनिवरों! अस्तेय कहा जाता है।

25. अथर्ववेद ११.५.१९

ओ३म् ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत। इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥

पदार्थः पण्डित क्षेमकरण

(ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य [वेदाध्ययन और इन्द्रियदमन], (तपसा) तप से (देवाः) विद्वानों ने (मृत्युम्) मृत्यु [मृत्यु के कारण निरुत्साह, दरिद्रता आदि] को (अप) हटाकर (अघ्नत) नष्ट किया है। (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य [नियमपालन] से (ह) ही (इन्द्रः) सूर्य ने (देवेभ्यः) उत्तम पदार्थों के लिये (स्वः) सुख अर्थात् प्रकाश को (आ अभरत्) धारण किया है॥

26. योग दर्शन २.३८

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

ब्रह्मचर्य, प्रतिष्ठायाम्, वीर्य, लाभः॥

ब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्य (में), प्रतिष्ठायाम् दृढ़ स्थिति हो जाने पर, वीर्य सामर्थ्य (का), लाभः लाभ (होता है)॥

ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित होने पर वीर्य लाभ होता है। अर्थात् ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित व्यक्ति के देह में परमेश्वर की विमल ज्योति प्रकाशित होती है।

उपस्थेन्द्रीय के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों पर भी नियन्त्रण रखना चाहिए। आंखों के रूप में जाने से, कानों को शब्दों की ओर दौड़ लगाने से, नासिका को गन्ध की ओर भागने से, जिह्वा को रसपान से, त्वचा को स्पर्श आनन्द में मग्न होने से रोको। सभी इन्द्रियों का निरोधरूपी ब्रह्मचर्य साधक को ब्रह्म साक्षात्कार की ओर ले जाएगा।

ब्रह्मचर्य दो शब्दों के मेल से बना है ब्रह्म और चर्य। ब्रह्म का अर्थ है ईश्वर, वेद, ज्ञान और वीर्य। चर्य का अर्थ है चिन्तन, अध्ययन, उपार्जन और रक्षण। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अर्थ होगा साधक ईश्वर का चिन्तन करे, ब्रह्म में विचरे, वेद का अध्ययन करे, ज्ञान का उपार्जन करे। शक्ति को उच्च स्तर की ओर उन्मुख करना और खाये हुए अन्न को ओजशक्ति में रूपान्तरित कर देना॥

27. मुण्डकोपनिषद ३.२.४

नाअयमात्मा बलहीनेन लभ्यः।

ब्रह्मचर्य से हीन व्यक्ति परमात्मा को नहीं पा सकता।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

ब्रह्मचारी कौन

माता मल्दाल्सा के वाक्यों को पान करने वाला ब्रह्मचारी बोला कि हे मातेश्वरी! तुम मुझे ब्रह्मचारी क्यों कहती हो? मैं नहीं जान पाता हूँ कि तुम ब्रह्मचारी मुझे उच्चारण किए जा रही हो? उन्होंने कहा हे ब्रह्मचरिष्यामि! तुझे ब्रह्मचारी इसलिए कह रही हूँ कि इसमें दो शब्द माने गएं हैं। ब्रह्म है, और चरी है। यह जो चरी है, इसका नाम प्रकृति है और ब्रह्म परमपिता परमात्मा को कहा जाता है। मानो जो दोनो का मन्थन करने वाला है वह मन्थन कर रहा है। ब्रह्मचरिष्यामि, ब्रह्मचारी अप्रतम् जो प्रत्येक मानो आभा को अपने में दृष्टिपात करने वाला है और वह ब्रह्म अस्सुतम देखो, ब्रह्म और चरी दोनों का ही मन्थन करता है। मानो देखो, दोनों के गर्भ में एक मृत्यु देखो, नृत्त कर रही है। मृत्यु को जो दूरी करना चाहता है, वो ब्रह्मचारी कहलाता है। इसीलिए तू ब्रह्मचारी है। क्योंकि तू अपने में महान कहलाएगा। मेरे पुत्रो! जब माता मल्दाल्सा ने यह कहा तो ब्रह्मचारी ने कहा हे माता! यह भी मैंने स्वीकार कर लिया। यह आपने जो मुझे उत्तर दिया, परन्तु ये जानना चाहता हूँ ब्रह्मचारी कौन है? पुनः यह प्रश्न करने लगा ब्रह्मचारी, कि ब्रह्मचारी कौन है? उन्होंने कहा हे बाल्य! जो साधक होता है और साधना में प्रवेश करता है, मानो देखो, जो प्रत्येक श्वांस मानं ब्रहे कृतं लोकाः प्रत्येक श्वांस को मानो देखो, तरंग को ब्रह्मसूत्र में जो पिरोने वाला है, वो ब्रह्मचारी कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा हे माता! यह भी मैंने जान लिया। परन्तु मेरा यह प्रश्न है कि ब्रह्मचारी कौन है? उन्होंने कहा हे बालक! ब्रह्मचारी वो है जो मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण करना चाहता है। जो प्रकाश की पगडण्डी में प्रवेश

कर जाता है और अन्धकार की पगडण्डी से दूरी हो जाता है। क्योंकि दो प्रकार के मार्ग हमारे यहाँ माने गएं हैं। एक मानो इस संसार का मार्ग है और एक चेतना का, ब्रह्म का, प्रकाश का मार्ग है। जिसे ज्ञानवान ग्रहण करते हैं। हे ब्रह्मचारी! जो ज्ञानवान बनकर के अन्धकार को दूरी करने वाला है वही ब्रह्मचारी कहलाता है।

मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्मचारी ने स्वीकार कर लिया उन्होंने कहा माता! यह भी मैंने स्वीकार कर लिया परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ, ब्रह्मचारी कौन है? उन्होंने कहा हे पुत्र! ब्रह्मचारी वह कहलाता है, जो इस संसार को विजय कर लेता है और संसार को वो विजय करता है, जो मन को अपने में धारण करता हुआ प्राण में प्रवेश कर देता है और प्राण प्रतिष्ठा विचारों में प्रवेश हो जाती हैं देखो, मन, प्राण और विचार जब ये तीनों एक सूत्र के मनके बन जाते हैं, तो वह ब्रह्मचारी मृत्यु को विजय कर लेता है, और वही ब्रह्मचारी कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, माता मल्दाल्सा का बाल्य छह वर्ष का ब्रह्मचारी यह प्रश्न कर रहा है।

पुनः उसने ये प्रश्न किया कि हे माता! ब्रह्मचारी कौन कहलाता है? ब्रह्मचारी तुम किसे उच्चारण करते हो? उन्होंने कहा ब्रह्मचारी वह कहलाता है, जो मानो देखो, ब्रह्मणां ब्रभा कृतं जो वसुन्धरा को जानता है। मानो देखो, वसुन्धरा क्या है? वसुन्धरा कहते हैं पृथ्वी को। वसुन्धरा कहते हैं, जो पालन करने वाली है। मानो देखो, वसुन्धरा मेरे प्यारे! देखो, जो पृथ्वी से लेकर के और मुनिवरों! देखो, माता और वह जो परमपिता परमात्मा जो वसुन्धरा है, इन तीनों को जानने वाले को बेटा! ब्रह्मचारी कहते हैं। मेरे प्यारे! देखो, माता के उपदेशों को, देखो, कृतिका को पान करके वो मौन हो गया। उसने कहा माता! ये मैंने जान लिया परन्तु मेरा एक प्रश्न और रह गया कि ब्रह्म किसे कहते है?

28. अथर्ववेद ३.२४.५

ओ३म् शर्तहस्त सुमाहंर् सहंस्रहस्त् सं किंर।

(शतहस्त) हे सैकड़ों हाथों वाले ! [मनुष्य !] [धान्य को म० ४] (समाहर) बटोर कर ला, और (सहस्रहस्त) हे सहस्रों हाथों वाले (सम्) अच्छे प्रकार से (किर) फैला।

29. योग दर्शन २.३९

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथंतासंबोधः ॥

अपरिग्रहः, स्थैर्ये, जन्म, कथन्ता, सम्बोधः ॥

अपरिग्रहः अपरिग्रह (के), स्थैर्ये दृढ़ प्रतिष्ठित हो जाने पर, जन्म – पूर्वजन्म, कथन्ता कैसे हुए थे?

अपरिग्रह के दृढ़ प्रतिष्ठित हो जाने पर, पूर्वजन्म कैसे हुए थे ? इस बात का भलीभाँति ज्ञान हो जाता है। अपरिग्रह आवश्यकता से अधिक संचय नहीं करना और दूसरों की वस्तुओं की इच्छा नहीं करना।

शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

साधना में सब से प्रथम अहिंसा आता है, सत आता है। अस्तेय आता है। ब्रह्मचर्य आता है, हम जब अहिंसा सत अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पर विचार विनिमय करते हैं, अध्ययन करते हैं तो हम योग सिद्ध आत्मा हो जाते हैं। हमारा मानवीय दर्शन है।

महाराजा रघु का आता रहता है, महाराजा हरिश्चन्द्र का आता रहता है, महर्षि भारद्वाज जी का आता रहता है, हमारे यहाँ और भी महाराजा सगर इत्यादि हुए हैं। जिन्होंने अपने राष्ट्र को महान बनाने के लिए क्या क्या किया। क्योंकि बिना त्याग के यह समाज ऊँचा नहीं बनता। विना त्याग के यह पृथ्वी नहीं तपती, बिना त्याग तपस्या के ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी नहीं बनता। बिना त्याग तपस्या के यज्ञमान यज्ञशाला में यज्ञमान नहीं बनता। बिना त्याग के उद्गाता उद्गाता नहीं होता, ब्रह्मा ब्रह्मा नहीं रहता। यह जितना भी संसार का चक्र चल रहा है यह सब त्यागमय है। प्रत्येक आभा त्यागी जा

रही है और त्यागपूर्वक यह ब्रह्माण्ड गति कर रहा है। ऐसे ही जब राष्ट्र में त्याग नहीं रहेगा तो राष्ट्र नहीं चलेगा। राष्ट्र में जब बुद्धिमान पुरोहित नहीं रहेंगे वह राजा ऊँचा नहीं होगा। राष्ट्र में तपने के लिए महाराजा रघु सर्व द्रव्य दान दे दिया। रज के पात्रों में भोजन कर रहे हैं।

पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे यह वर्णन कराया, कई यागों में ले गये, परन्तु देखो, महाराजा रघु जो राम के वंशलज कहलाते थे देखो, राजा रघु ने तो सर्वत्र याग कर दिया था, और ब्रह्मचारी जब उनके लिए दक्षिणा लेने के लिए अपने पूज्य गुरु के लिए आए तो उन्होंने देखो, कहा सम्भो ब्रह्मा देवत्वां क्या अमृतं देखो, जब वह एक सूक्ष्म पात्र में उनका देखो, जल को ले करके राजा रघु ऋषि वरतेन्तु के द्वारं ब्रह्मे उनके द्वार पर पंहुचे, तो उन्होंने कहा जल ब्रहे मेरे प्यारे! देखो, वह अपने में आश्चर्य हो गये, उन्होंने कहा राजन! मैं तो यह विचार करके आया था, कि मुझे लाखों मुद्रा चाहिए, और गुरु को दक्षिणा देनी है, और इन पात्रों में यह तुम दे रहे हो, राजा ने कहा प्रभु! आप आसन ग्रहण कीजिए, मैं यह अमृतां दिव्यां मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने भी यह वर्णन कराया है, क्या जब देखो, राजा रघु ने देखो, कुबेर पर आक्रमण करने का विचार किया, रात्रि का काल था, अपने राष्ट्रों नायकों के द्वारा राजा रघु ने यह अपने में विचार बनाया कि आज हम कुबेर को विजय करें। जब कुबेर को यह प्रतीत हुआ कि राजा रघु ऐसा महापुरूष है। जो सर्वत्र याग करने वाला है, और ब्रह्मचारी को दक्षिणा देनी है, तो उस समय ब्रह्मा कृता सुतः देखो, वह महाराज कुबेर ने अपने कुबेरों से कहा जिनके द्वारा द्रव्य था, जाओ रघु को द्रव्य प्रदान करके आओ, राजा रघु के यहाँ जब याग को देखो, कुबेर के यहाँ द्रव्य स्वर्ण मुद्रा आ गई, मुद्रा आ जाने के पश्चात उन्होंने देखो, वह प्रदान की, लीजिए भगवन! महाराज रघु बड़े प्रसन्न हुए। अब वह द्रव्य जितना देना था, वह ब्रह्मचारी ने स्वीकार

कर लिया, अब द्रव्य रह गया है, कुबेर को अपने यहाँ उस द्रव्य को नही चाहता और वह द्रव्य राजा रघु भी नही चाहता वह ब्रह्मचारी को देना चाहता है। और ब्रह्मचारी यह चाहता है कि मुझे इतना द्रव्य प्राप्त हो, जितना मुझे लेना है, वह मुझे पर्याप्त हो गया है, मैं इस द्रव्य को नही लूंगा, अब देखो, इसमें जब संघर्ष हो गया देखो, महाराजा कुबेर के और राजा के ब्रह्मचारी के मध्य में तो वशिष्ठ मुनि और ऋषि मुनियों का एक समाज एकत्रित हुआ, और उन्होंने यह कहा कि यह जो द्रव्य तुम नही लेना चाहते, यह गऊओं के आहार में इस द्रव्य को प्रदान किया जाएं। जब मानो देखो, इस प्रकार के यागों की पूजा का जब प्रसंग आता है। तो मेरा अन्तरात्मा गद् गद् हो जाता है परन्तु जब मैं आधुनिक काल में इन पशुओं को और गऊओं को राजा के विचारों से नष्ट होता, जब दृष्टिपात करता हूँ तो हृदय दुःखित हो जाता है जब विचार आता है कि प्रत्येक गृह स्वामी को अपने यहाँ गऊओं का पालन करना है। जब यह विचार आता है कि प्रत्येक मानव और राजा के यहाँ भी एक गऊ होनी चाहिए, उसका दुग्धाहार करना चाहिए, क्योंकि राजा रघु के यहाँ एक कामधेनु गऊ थी, राम के यहाँ एक गऊ थी, देखो, वह अपने में कृषि का उद्गम करके उसे अन्न दे करके उस दुग्ध का आहार करते रहे हमारे यहाँ। **जब मैं विचारता रहता हूँ, क्या दूसरे जितने भी रूढ़ियों के आचार्य भी गऊओं के दुग्ध का आहार करके वह भी महान बनें है। बुद्धि विकसित हुई है, और पशुओं का पालन करने वाला मानो देखो, महानता में गमन करता रहता है, क्योंकि वह मन का विषय है, वह मन की धारा है, मन चाहता हैं क्योंकि मन भी पशु है, और पशु में वह प्रसन्न रहता है, तो इसीलिए वह पालना में रत्त रहना चाहिए।**

30. योग दर्शन २.३२

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।

शौच, संतोष, तपः, स्वाध्याय, ईश्वर, प्रणिधानानि, नियमाः ॥

शौच बाह्य एवं अंत:स्वच्छता, संतोष – संतुष्टि, तपः – तप, स्वाध्याय स्वाध्याय (और) ईश्वर प्रणिधानानि ईश्वर शरणागति (ये पाँच) नियमाः नियम हैं।

बाह्य एवं अंत:स्वच्छता संतुष्टि तप स्वाध्याय और ईश्वर शरणागति ये पाँच नियम हैं। स्वाध्या आत्म चिंतन व मनन करना। ईश्वर प्रणिधान ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण, पूर्ण श्रद्धा, ईश्वर को कण कण में दृष्टिपात करना।

31. योग दर्शन २.४०

शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥

शौचात्, स्व, अङ्ग, जुगुप्सा, परैः, असंसर्गः॥

शौचात् शौच के पालन से, स्व – अपने, अङ्ग अंगों (में), जुगुप्सा वैराग्य (और), परैः दूसरों के साथ, संसर्गः संसर्ग न करने की भी फिर प्रवृत्ति नहीं रहती।

स्वामी सत्यपति परिव्राजक

शौच अर्थात् शुद्धि। शुद्धि दो प्रकार की होती है। एक बाह्य और दूसरी आन्तरिक। शरीर, वस्त्र, स्थान, पात्र शुद्ध रखना और धन, सम्पत्ति को न्यायपूर्वक उपारजित करना शुद्धि है। अविद्या, मिथ्याभिमान, राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से दूर रहना आन्तरिक शुद्धि है। बाहर की शुद्धि न्यून परिश्रम साध्य है और आन्तरिक अधिक परिश्रम साध्य है।

32. योग दर्शन २.४२

संतोषादनुत्तमसुखलाभः ॥

संतोषात्, अनुत्तम, सुख, लाभः॥

संतोषात् संतोष (से), अनुत्तम – परम, सुख – सुख, लाभः प्राप्त (होता है)। संतोष से परम सुख प्राप्त होता है ।

सम्पूर्ण पुरुषार्थ जो उपलब्धि हो उससे सन्तुष्ट रहना।-स्वामी सत्यपति परिव्राजक

33. न्याय दर्शन ४.२.३

तन्निमित्तं त्ववयव्यभिमानः।

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

संकल्पकृत रूपादि विषय तो रागादि दोषों के साधारण कारण हैं परन्तु इनका विशेष कारण अवयवी का अभिमान है। 'यह देह मेरा है, यह स्त्री मेरी है, यह पुत्र मेरा है इत्यादि भौतिक पदार्थों में जो ममत्व बुद्धि का होना है, यह अवयवी का अभिमान कहलाता है। जब तक यह अभिमान नहीं टूटता अर्थात् मनुष्य यह नहीं समझता कि 'न मैं किसी हूं और न मेरा कोई है, यह यह सब सम्बन्ध कल्पित और क्षणिक है।' तब तक राग द्वेष का बन्धन जिसमें संसारी पुरूष जकड़े हुए है, छूट नहीं सकता। इसलिए मुमुक्षु पुरूष को केवल बाह्य विषयों से उपरात होकर ही सन्तुष्ट न होना चाहिए, किन्तु इस अहंकार के कीड़े को शरीर से निकालकर फेंकना चाहिए, जो सारे शरीर में दोषों का विषय फैला देता है।

34. ऋग्वेद ९.८३.१

ओ३म् पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः । अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ॥

पदार्थः आर्य मुनि

(ब्रह्मणस्पते) हे वेदों के पति परमात्मन् ! (ते) तुम्हारा स्वरूप (पवित्रं) पवित्र है और (विततं) विस्तृत है। (प्रभुः) आप सबके स्वामी हैं और (विश्वतः, गात्राणि) सब मूर्त पदार्थों के (पर्येषि) चारों ओर व्यापक हैं। (अतप्ततनूः) जिसने अपने शरीर से तप नहीं किया, (तदामः) वह पुरुष कच्चा है। वह तुम्हारे आनन्द को (न, अश्नुते) नहीं भोग सकता। (शृतास इत्) अनुष्ठानी पुरुष ही (वहन्तः) तुमको प्राप्त हो सकते हैं। वे (तत्) तुम्हारे आनन्द को (समाशत) भोग सकते हैं ॥

35. योग दर्शन २.४३

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात् तपसः ॥

काय इन्द्रिय सिद्धि: अशुद्धि क्षयात्, तपस:॥

तपस: तप के अनुष्ठान, पालन या फल से, अशुद्धि क्षयात् अशुद्धि का क्षय होने से, काय शरीर की एवं कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों का सिद्धि सात्विक सामर्थ्य बढ़ता है। तप का धातु अर्थ है 'तप दाहे' जलना जलाना। अग्नि के दो गुणों का सदा ध्यान रखना चाहिए यह पदार्थों को शुद्ध करती है और तेजयुक्त है। तप भी एक प्रचण्ड प्रक्रिया है जो मनुष्य के मलों को जलाकर उसे आत्मचैतन्य के प्रकाश से उद्भासित करती है।

36. मुण्डकोपनिषद १.१.८

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते । अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

(तपसा) परमात्मा के ज्ञान से (चीयते) महानता है, परमात्मा की जीवात्मा और प्रकृति पर इस महानता के कारण वह (ब्रह्म) सबसे बड़ा कहलाता है (ततः) उस परमात्मा के ज्ञानानुकूल प्रकृति को क्रिया करने से (अन्नम्) जो सबको बिना किसी विशेषता के पचाता है अर्थात् आकाश (अन्नात्) उस अन्न से (प्राणः) प्राण बनते हैं (मनः) मन उत्पन्न हुआ (सत्यं) और उससे सत्य अर्थात् कारणरूप सूक्ष्म भूत उत्पन्न हुए और (लोकः) उससे यह स्थूल शरीर उत्पन्न हुआ (कर्मसु) उनसे कर्म और कर्म से (च) और (अमृतम्) मुक्ति के साधन अन्तःकरण की शुद्धि होती है।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

महर्षि याज्ञवल्क्य महाराज अपने आसन पर विराजमान थे। वह ब्रह्मचारियों के मध्य में तप की मीमांसा कर रहे थे। ब्रह्मचारियों से बोले कि हे ब्रह्मचारियों! मेर ऐसी इच्छा है कि मैं तपने के लिए जा रहा हूँ। ब्रह्मचारियों ने कहा प्रभु! जैसी आपकी इच्छा। महर्षि याज्ञवल्क्य ने वहाँ से प्रस्थान किया। अपने मन में यह विचारा कि मैं तपने के लिए जा रहा हूँ परन्तु मेरी दो पत्नीयां हैं एक का नाम कात्यायनी है दूसरे का नाम

मैत्रेयी कहलाता है। मन से जो सम्बन्धित होते हैं उन्हे भी सन्तुष्ट करना अनिवार्य है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने विचारा मैं वन में तो आ गया हूँ, मुझे तपस्या करनी है। महानता में परिणत होना है और मुझे कैसे तपस्वी बनना है। विचार के लिए संसार में मन की आवश्यकता है। मन को पवित्र बनाने के लिए मन का शोधन किया। शोधन क्या होता है? मन को शोधन करने के लिए अन्न की आवश्यकता होती है। उन्होंने विचारा कि मुझे कौन से अन्न को पान करना है। ऋषि ने विचार जिस भूमि में से कृषक अपने गृह को अन्न ले जाते हैं और वह अन्न जो भूमि में पड़ा हुआ बच जाता है उस अन्न को मुझे चुनना है, उसी का आहार करना है, उसी से मेरा मन वास्तव में सुन्दर बन जाएगा। ऋषि ने सङ्कल्प धारण कर लिया और उस अन्न को चुनना आरम्भ कर दिया जिसको सिला अन्न कहते हैं उसी का पान करने से उनका मन अच्छी प्रकार शोधन हो गया।

याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने इसी प्रकार बारह वर्ष की तपस्या की। उस अन्न को पान किया, इन्द्रियों को संयम में किया। बारह वर्ष के पश्चात उन्होंने एक पोथी का निर्माण किया जिस पोथी का नाम शतपथ ब्राह्मण कहा जाता है।

37. योग दर्शन २.४४

स्वाध्यायाद् इष्टदेवतासंप्रयोगः ॥

स्वाध्यायात् इष्टदेवता सम्प्रयोग:॥

स्वाध्यायात् सद्ग्रन्थों एवं गुरुमुख से सुने ज्ञान का अध्ययन करने से, इष्ट देवता विद्वान, ऋषि मुनि एवं योग एवं स्वाध्याय निष्ठ योगियों से, सम्प्रयोग: उनका साक्षात् दर्शन एवं उनकी अनुकम्पा प्राप्त हो जाती है।

38. तैतरियोपनिषद ११.१

स्वाध्यायात् मा प्रमदः स्वाध्याय में प्रसाद न कर । स्वाध्यायप्रवचनाभ्याम्, न, प्रमदितव्यम् पढ़ने और पढ़ाने में प्रमाद न कर ।

पदार्थः आचार्यः, वेदम्, अनूच्य, अन्तेवासिनम्, अनुशास्ति । आचार्य वेद पढ़ाकर, समीप

रहने वाले शिष्य को उपदेश करता है । सत्यं वद सच बोलो । धर्म चर धर्म का आचरण करो । स्वाध्यायात् मा प्रमदः स्वाध्याय में प्रसाद न कर । आचार्याय, प्रियम्, धनम्, आहृत्य आचार्य के लिए प्रिय धन को लाकर अर्थात् शिक्षा समाप्ति के बाद उचित दक्षिणा देकर प्रजातन्तुं, मा व्यवच्छेत्सीः प्रजा के सूत्र को मत तोड़ अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम को समाप्त करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर । सत्यात्, न प्रमदितव्यम् सच बोलने में प्रमाद न कर । धर्मात्, न प्रमदितव्यम् धर्म में अर्थात् धर्माचरण करने में आलस्य न कर । कुशलात्, न, प्रमदितव्यम् कुशल जो कुछ उपयोगी और कल्याणप्रद है उस में प्रमाद न कर । भूत्यै, न, प्रमदितव्यम् ऐश्वर्य के बढ़ाने में प्रमाद न कर । स्वाध्यायप्रवचनाभ्याम्, न, प्रमदितव्यम् पढ़ने और पढ़ाने में प्रमाद न कर। भाष्य नारायण स्वामी

39. तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१२.९.७

नावेदविन्मनुते तं बृहन्तमिति ॥

पदार्थः महर्षि दयानन्द ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका

वेदों को नहीं जानने वाला मनुष्य परमेश्वरादि सब पदार्थ विद्याओं को अच्छी प्रकार से नहीं जान सकता । और जो जो जहाँ जहाँ भूगोलों वा पुस्तकों अथवा मन से सत्यज्ञान प्रकाशित हुआ है और होगा, वह सब वेदों में से ही हुआ है । क्योंकि जो जो सत्यविज्ञान है, सो सो ईश्वर ने वेदों में धर रखा है। इसी के द्वारा अन्य स्थानों में भी प्रकाश होता है । और विद्या के बिना पुरुष अन्धे के समान होता है । इससे सम्पूर्ण विद्याओं के मूल वेदों को बिना पढ़े किसी मनुष्य को यथावत् ज्ञान नहीं हो सकता । इसलिये सब मनुष्यों को वेदादि शास्त्र अर्थ ज्ञान सहित अवश्य पढ़ने चाहिये। हमे दर्शन (छह दर्शन), उपनिषद (शंकराचार्य द्वारा निर्धारित ग्यारह उपनिषद) और ब्राह्मण गन्थों का अध्ययन भी करना चाहिए।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्णा दत्त जी महाराज

जिसकी प्रजा कैलाश के तुल्य हो और प्रजा महान हो, मुनिवरों! उस समय राजा का नाम शिव होता है जिस राजा के राष्ट्र में ज्ञान एवं विज्ञान से, आत्मिक बल से, वेदों के स्वाध्याय से जिसकी प्रजा बहुत ऊँची हो, जिसके राष्ट्र में देव कन्याएं और मानव बहुत उच्च भावना बाले हों अर्थात कैलाश पर्वत जैसी ऊँची भावना वाली प्रजा हो, बेटा! उस राजा के स्वामी को शिव कहा जाता है।

यदि कोई मानव कटुवचन भी उच्चारण कर जाएं, उसको सहन कर लेना चाहिए और सहन करके उस पर मनन करना चाहिए। मुनिवरों! आचार्यों ने ऐसा कहा है, कि जो मानव दूसरों को हानि पंहुचाने का प्रयत्न करता है, वह स्वयं हानि का पुतला बन करके नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। वेद का गान भी ऐसा ही कह रहा था। परन्तु वेदों का व्याख्यान कहाँ तक देवें। वेदों में तो विशाल ज्ञान का भण्डार भरा पड़ा हैं बहुत काल हुआ जब वेदों का स्वाध्याय किया था, इसीलिए आज भी वह हमारे सामने निधि है। जिसने वेदों की विद्या को अच्छी प्रकार निगला हो, स्वाध्याय किया हो। और निगल कर दूसरों को देने वाला हो, उसको ब्राह्मण की उपाधि दी जाती हैं।

आज यदि कोई मानव यह कहता है कि यह सृष्टि किसी ने नहीं बनाई, यह तो वैसे ही अनादि है। इसको न कोई बनाने वाला है, और न नष्ट करने वाला है। तो उन व्यक्तियों ने उस वेद की विद्या का स्वाध्याय नहीं किया। आत्मा को स्वतः ज्ञान होता है, परन्तु हमारे कर्मों के वश, हमारे प्रकृति के आवेशों में आने के कारण हम उस ज्ञान को भूल बैठे हैं। उस ज्ञान को प्रज्ज्वलित करने के लिए, हमें आध्यात्मिक परिश्रम की आवश्यकता है, तब आत्मा का ज्ञान और प्रयत्न जो स्वाभाविक है वह प्रत्यक्ष हो जाएगा।

40. योग दर्शन २.४५

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥

समाधिसिद्धिः, ईश्वर प्रणिधानात् ॥

ईश्वर प्रणिधानात् ईश्वर प्रणिधान से, समाधिसिद्धिः समाधि की प्राप्ति हो जाती है ।

ईश्वर की भक्ति विशेष करने एवं फल की इच्छा किये बिना शुभ अशुभ सब प्रकार के कर्मों को ईश्वर में समर्पित करने से शीघ्र ही समाधि की प्राप्ति हो जाती है॥

41. योग दर्शन ३.३

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥

तत्, एव, अर्थ-मात्र-निर्भासम् ,स्वरुप-शून्यम्, इव, समाधिः ॥

तदेव- तब वह ध्यान ही, अर्थमात्र- केवल उस वस्तु के अर्थ या स्वरूप का, निर्भासं- आभास मात्र करवाने वाला, स्वरूपशून्यम् - अपने स्वरूप से शून्य हुआ, इव – जैसा, समाधिः - समाधि होती है।

जब योगी स्वयं के स्वरूप को भूलकर केवल ध्येय (जिसका ध्यान कर रहा है) में ही लीन हो जाता है, तब योगस्थ साधक की वह अवस्था-विशेष समाधि कहलाती है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

इस मानव शरीर में तीन नाड़िया हैं, इडा, पिंगला, सुषुम्ना या गंगा, यमुना, सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हैं जब मानव योगाभ्यासी बन कर मूलाधार में ध्यान करके रमण करता है तब उसको मृत्यु लोक की गंगा का ज्ञान होता है इसके पश्चात जब आत्मा नाभिचक्र में और हृदय चक्र में ध्यानावस्था में पंहुचता हैं, तब उसे आकाश गंगा का ज्ञान होता है, जब योगाभ्यासी आत्मा समाधि अवस्था में घ्राणेन्द्रिय चक्र में ध्यान लगाता हैं तब वह त्रिवेणी में पंहुच जाता हैं। या त्रिवेणी का साक्षात्कार करता है, बेटा! इससे आगे चलकर आत्मा जब ब्रह्मरन्ध्र में पंहुच जाता है, तब उस योगी आत्मा को ब्रह्मलोक की गंगा का ज्ञान होता हैं।

पूज्यपाद गुरुदेवः अच्छा, तो मुनिवरों! अभी महानन्द जी ने हमें संकेत किया, महानन्द

जी ने हम से प्रश्न किया, कि योगी को विषय कुछ और महान बनाओ।

मुनिवरों! इसमें तो गंगा का विषय और भी महान बन जाता है। हमारे यहाँ योगियों ने इन गंगाओं को इस प्रकार जाना है, कि जब मानव कर्मकाण्ड करता हुआ, ध्यान में लीन हो जाता हैं, मग्न हो करके, बेटा! आगे चल करके, यह समाधि में लय होने लगता है। तो इसकी यह जानने की इच्छा होती है, कि आत्मा और प्राणों की सन्धि कैसे होती हैं, और आत्मा प्राणों को लेकर कैसे चलता हैं? तो मुनिवरों! उस जिज्ञासु का हृदय पवित्र, निर्मल होने के नाते, यह आत्मा और प्राणों की एकता हो जाती है। यह कैसे हो जाती हैं? जैसे मुनिवरों! देखो, एक घुड़सवार अपने उद्दण्ड घोड़े पर आसन से सवार है ऐसे ही मुनिवरों! यह जो आत्मा है प्राण रूपी घोड़े पर सवार हो जाता है और यह आत्मा जब सवार होकर चलता है, आगे चलता हुआ बेटा! यह मूलाधार में जाता है। मूलाधार पर बेटा! वह महान स्थान आता हैं, जहाँ देखो, इन तीन गंगा की उत्पत्ति हुई हैं, जिसको गंगा, यमुना और सरस्वती कहते हैं।

42. योग दर्शन २.४६

स्थिरसुखम् आसनम् ॥

स्थिर सुखम् आसनम्॥

स्थिर एक ही स्थिति विशेष में बिना हिले डुले स्थिर रहना, सुखम् सुखमय अर्थात आरामदायक स्थिति या अवस्था को, आसनम् आसन कहते हैं॥

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्णा दत्त जी महाराज

बेटा! मैं बहुत पुरातन काल में एक एक आसन पर विराजमान होता। क्योंकि आसन भी ऐसा हो जिस आसन पर वह सिद्धासन वाला हो। मेरे प्यारे! देखो, उस आसन पर विराजमान हो करके सोम लताओं को पान करने वाला मेरे प्यारे! सोम लताओं के गुणों वाला आसन हो। जैसे हमारे यहाँ कुश है। कुश कहते हैं पृथ्वी में मानो एक

औषध होती है उसे कुश कहते हैं। परन्तु कुश के नाना प्रकार के भेदन होते हैं। उन्हीं का आसन है, उन्हीं का ओड़ना है। तो मेरे प्यारे! देखो, उसमें सुगन्धि जाती रहती है, मस्तिष्कों का निर्माण होता रहता है। मेरे प्यारे! जब मानव व्याख्या में जाता है, बौद्धिकता में जाता है तो मानव के जीवन का एक मानवीय क्षेत्र में आभा से युक्त होने वाला निर्माण आभा में रमण करने वाली निर्माण शालाओं का निर्माण होता है। तो मेरे प्यारे! आज मैं विशेषता प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय यह कि नाना प्रकार की जो औषध हैं, आयुर्वेद का हमें पूर्णतया ज्ञान होना चाहिए।

43. योग सूत्र २.४८

ततो द्वन्द्वानभिघातः।

ततः,द्वन्द्वः,अनभिघातः ॥

ततः आसन की सिद्धि हो जाने पर, द्वन्द्वः सर्दी – गर्मी भूख प्यास, लाभ हानि आदि द्वंद्व, अनभिघातः कम से कम अथवा पूर्ण रूप से नहीं सताते हैं।

योगसाधना के लिए मुख्यासन चार हैं सिद्धासन, पद्मासन, स्वस्तिकासन और सुखासन।

44. योग सूत्र २.४९

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।

तस्मिन् सति, श्वास,प्रश्वासयोः गतिविच्छेदः प्राणायामः॥

तस्मिन् सति आसन की सिद्धि हो जाने पर, श्वास प्राणवायु को अन्दर लेने (पूरक) व प्रश्वासयोः प्राणवायु को बाहर छोड़ने की (रेचक) गतिविच्छेदः सहज गति को अपने सामर्थ्य अनुरूप रोक देना या स्थिर कर देना ही प्राणायामः प्राणायाम कहलाता है ।

45. मनुस्मृति ६.७१

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः। तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

जैसे अग्नि में तपाने से स्वर्णादि धातुओं के मल नष्ट होकर वे शुद्ध हो जाते हैं, वैसे ही प्राणायाम के द्वारा मन आदि इन्द्रियों के दोष दूर होकर वे निर्मल हो जाती हैं।

46. योग सूत्र २.५०

बाह्याभ्यान्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घ सूक्ष्मः।

बाह्य आभ्यंतर स्तम्भवृत्ति: देश काल संख्याभि:परिदृष्ट: दीर्घ सूक्ष्म:॥

बाह्यवृत्ति: प्राणवायु को बाहर निकालकर कर बाहर ही रोकना, आभ्यंतर वृत्ति: प्राणवायु को भीतर भरकर भीतर ही रोकना, स्तम्भवृत्ति: प्राणवायु को न भीतर भरना न ही बाहर छोड़ना अर्थात प्राणवायु जहाँ है उसे वहीं पर रोकना, देश स्थान अर्थात प्राणवायु नासिका से जितनी दूरी तक जाता है वह उसका स्थान है। काल समय अर्थात जितने समय तक प्राणवायु बाहर या भीतर रुकता है।, संख्याभि: एक प्राणायाम को करने में स्वाभाविक रूप से कितने श्वास प्रश्वास हो सकते हैं, उनकी गणना द्वारा परिदृष्ट: भली प्रकार देखा व जाना हुआ प्राण, दीर्घ लम्बा व सूक्ष्म: हल्का हो जाता है।

बाह्यवृत्ति, आभ्यन्तरवृत्ति व स्तम्भवृत्ति ये तीन प्राणायाम स्थान, समय व गणना के द्वारा ठीक प्रकार से देखा व जाना से प्राण लम्बा व हल्का हो जाता है।

47. योग दर्शन २.५१

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षपी चतुर्थः।

बाह्य, आभ्यन्तर-विषय-आक्षेपी, चतुर्थः॥

बाह्य - श्वास को बाहर निकाल कर बाहर ही रोकना, आभ्यन्तर- श्वास को भीतर लेकर भीतर ही रोकना, विषय - कार्य या कर्म का, आक्षेपी - रुओत्याग या विरोध करने वाला, चतुर्थ: - यह चौथा प्राणायाम है ।

श्वास को बाहर रोकने व अन्दर रोकने के विषय अर्थात कार्य का त्याग या विरोध करने वाला यह चौथा प्राणायाम है।

48. योग दर्शन २.५२

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥

तत:क्षीयते,प्रकाश-आवरणम्।

ततः- उस प्राणायाम के अभ्यास से, प्रकाश - विवेकज्ञान पर पड़ा, आवरणम् - आवरण या पर्दा, क्षीयते- कमजोर हो जाता है।

प्राणायाम के अनुष्ठान से विवेकज्ञान के ऊपर पड़े अज्ञान की परत कमजोर होने लगती है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

यह प्राण ही तो सखा है, यह प्राण जब देखो, योगीजन, अपने ब्रह्मवर्चोसी की उपासना करते हैं अथवा साधना करते हैं। वह प्राणायाम करते रहते हैं, मानो कहीं वह सूर्य प्राणायाम करते हैं, कहीं चन्द्र प्राणायाम करते हैं, मानो कहीं संकल्पोमयी प्राणायाम करते हैं और उसी से रेचक और कुम्भक बन करके मानो वह प्राण ही मेरे प्यारे! देखो, हमारी आत्मा की जो अनुपम तरंगें हैं, मुनिवरों! देखो, जो चित्त के मण्डल में, जो नाना प्रकार के संस्कार विद्यमान हैं। जिनके कारण संसार में आवागमन लगा हुआ है, कोई यहाँ आ रहा है, कोई जा रहा है। मेरे प्यारे! देखो, वह जो आवागमन लगा हुआ है, वह आवागमन संस्कारों के कारण है। जब तक मानव के शरीर में, संस्कार विद्यमान होते हैं, इन संस्कारों से ही, मानव के जीवन का आवागमन, शरीरों को धारण करता रहता है। परन्तु जब यह प्राण सखा मुनिवरों! देखो, ऊर्ज्वा को प्राप्त करने लगते हैं यौगिक जन, साधक, जब साधना करता है तो वह संकल्पोमयी प्राणायाम करता है। मानो सूर्य स्वर से, प्राण की उर्ध्वा गति बनाता है, चन्द्र स्वर से उसकी ध्रुवा गति बनाता है मानो कहीं ध्रुवा से उर्ध्वा में, कहीं उर्ध्वा से ध्रुवा में, इस प्रकार जब प्राणायाम करता है तो मन की प्रतिभा उसमें रत्त हो जाती है। मेरे प्यारे! देखो, इन दोनों का एकोकीकरण प्रारम्भ होने लगता है। जब इनका एकोकीकरण होता है तो वह संस्कारों का क्षय होने लगता है। मानो देखो, संस्कारों को वह जानने लगता है। लघु मस्तिष्क में, मुनिवरों! देखो, वहीं प्राण को ले जाता है।

बाह्य आभयन्तर रेचक व कुम्भक प्राणायाम महर्षि दयानन्द

ओ३म्' को ईश्वर के दर्शन का साधन बनाने का यह ढंग है कि यम और नियम के व्रत पूरे करके, दृढ़ आसान लगाकर रेचक, पूरक, कुम्भक प्राणायाम की जो विधि महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने सर्व साधारण के लिए 'सत्यार्थप्रकाश' में अपने पूरे अनुभव से लिखी है, उसके अनुसार प्राणायाम करें। स्वामी जी लिखते हैं।

जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न जल बाहर निकल जाता है ,वैसे प्राण को बल से बाहर फेंककर,बाहर की यथाशक्ति रोक देवें। जब बाहर निकलना चाहें,तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रखें,जब तक कि प्राण बाहर रहता है। इसी प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। जब घबराहट हो, तब धीरे धीरे वायु को भीतर लेके फिर भी वैसे ही करते जायें, जितना सामर्थ्य और इच्छा हो;परन्तु मन में 'ओम्' इसका जप करते जायें।इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है।'बाह्य विषय'अर्थात् बाहर की अधिक रोकना,दूसरा'आभ्यन्तर'अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाये उतना रोक के,तीसरा 'स्तम्भवृत्ति' अर्थात् एक ही बार जहां का तहां प्राण को यथाशक्ति रोक देना,चौथा 'बाह्याभ्यन्तराक्षेपी' अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर आने लगे,तब उसके विरुद्ध न निकलने देने के लिए बाहर से भीतर लें;और जब बाहर से भीतर आने लगे,तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर रोकता जाये।ऐसे एक दूसरे के विरुद्ध किया करें तो दोनों की गति रुककर प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रिय भी स्वाधीन होते हैं।बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र,सूक्ष्म रूप हो जाती है और बहुत कठिन तथा सूक्ष्म विषय को शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य के शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होता है बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझकर उपस्थित कर लेगा।स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे।

49. ऋग्वेद ०८.००६.२८

ओ३म् उपह्वरे गिरीणां संगथे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत ॥

इन्द्रः, विराडार्षीगायत्री, षड्जः।

पदार्थः आर्य मुनि

(गिरीणाम्, उपह्वरे) पर्वतों के गहर प्रदेश में और (नदीनां, संगथे, च) नदियों के संगम में (विप्रः) वह विद्वान् परमात्मा (धिया) स्वज्ञानरूप से (अजायत) विद्यमान है॥

50. मनु स्मृति २.१०४

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः। सावित्रीमप्यधीयीत गत्वाऽरण्यं समाहितः॥

पदार्थः डा. सुरेन्द्र शर्मा

(अरण्यं गत्वा) जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा (समाहितः) सावधान हो के (अपां समीपे नियतः) जल के समीप स्थित होके (सावित्रीम्+अपि+अधीयीत) सावित्री अर्थात गायत्री मन्त्र का उच्चारण अर्थ ज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलन को करे।

व्याख्याः महर्षि दयानन्द

आगे चलकर ऋषि दयानन्द जी महाराज ने लिखा है जंगल मे अर्थात् एकान्त में जा, सावधान हो के, जल के समीप स्थित हो के, नित्यकर्म को करता हुआ 'सावित्री' अर्थात् 'गायत्री मन्त्र' का उच्चारण, अर्थ ज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलन को करे, परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है। इस प्रकार प्राणायाम तथा 'ओ३म्' का जप करता हुआ साथ ही भृकुटि या आज्ञा चक्र में ओ३म् को ध्यान से लिखा देखे। महर्षि दयानन्द ने उपासना के लिए एकान्त देश का भी उल्लेख किया है,इसलिए इस सम्बन्ध में भी कुछ लिख देना उचित समझता हूँ।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

गोमेध याग के बहुत से भिन्न भिन्न प्रकार के पर्यायवाची हैं, देखो, ब्रह्मचारी विद्यालय में गोमेध याग कर रहा है, एक मानो देखोए किसी नदियों के तट पर विद्यमान हो करके एक योगेश्वर जब अपनी इन्द्रियों के ऊपर संयम करता है, और इन्द्रियों के

विषयों को साकल्य बना रहा है और साकल्य बना करके अपने में एकोकीकरण कर रहा है, वह मानो देखो, वह भी गोमेध याग कर रहा है।

हमारे यहाँ आयुर्वेद की औषधियों को पान करके ऋषि योगाभ्यास करते रहे हैं और यागी बनते रहे हैं क्योंकि जब तक प्राण का संचार अच्छे विशुद्ध रूप से नही हो पाता तब तक हमारा योगी बनना असम्भव हो जाता है। क्योंकि प्राण विशुद्ध रूपों से गति करना प्राण का अपने में संघर्ष न करना बहुत अनिवार्य है। हमारे आचार्यजन एक संकल्पोमयी प्राणायाम किया करते थे। पुरातन काल में ये प्रायः हम भी कराते रहे हैं। संकल्प से प्राणायाम होते हैं। जैसे हमने संकल्प किया है सूर्य और चन्द्रमा स्वरिञ्जनी होती है। जब संकल्प के द्वारा उनका आदान प्रदान होता है। तो संकल्पोमयी प्राणायाम मानव के बहुत से रूग्णों को और चंचलता को समाप्त कर देता है। मुझे बहुत पुरातन काल की एक वार्त्ता स्मरण है। एक समय मगध राष्ट्र में चले गए थे, बहुत पुरातन काल हुआ। मगध राष्ट्र में एक सरूचिकेत नामक ऋषि थे वह राष्ट्र मे बड़े प्रसिद्ध थे वह भयंकर वनों रहते थे। नद नदियों के तट पर रहते और ब्रह्मचारियों को कुछ शिक्षा भी देते रहते, एक ब्रह्मचारी उनके द्वारा ऐसा आ पंहुचा मनोबल चंचल बन गया, चंचल कैसे बना जिसे उन्माद के रूप में परिणत करते हैं। इसे उन्माद के रूपों में वर्णन करते रहते हैं। सरूची ऋषि ने उस ब्रह्मचारी को अपने आश्रम में आसन दिया। वह उसके ऊपर अन्वेषण कर रहे थे। अन्वेषण क्या था, उनके त्रि जो दोष हैं उन दोषों के ऊपर अन्वेषण और शोधन कर रहे थे समुद्र जल की प्रतिक्रियाओं में जल में उन्हें लाना जल में तपाना और संकल्पोमयी प्राणायाम करने से मस्तिष्क की सूक्ष्मवाहक नाड़ी है। जो अग्नि में किसी कारण किसी आवेश से या किसी के आक्रमण से नाड़ी संकुचित हो जाती है, नाड़ियों में संकुचित पन आ जाता है। वह नाड़ियों का स्पष्टीकरण हो जाता है। स्पष्टीकरण होने से बुद्धि का विकास हो जाता

है और बुद्धि का विकास होने से उसका रूग्ण समाप्त हो जाता है।

तुम्हें केवल यह परिचय देने आया हूँ कि यहाँ बहुत सी नाना प्रकार की औषधियां है, जिनको पान करने से मानव महान बन जाता है, पवित्र बन जाता है, सर्पगन्धा औषधि के आसन से यदि योगेश्वर ये चाहता है, कि मैं ध्यानावस्थित हो जाऊं, तो ध्यानावस्थित हो करके, वह परमात्मा से अपना मिलान करने लगता है **हमारे यहाँ ऐसे ऐसे कुशा के आसनों पर विद्यमान हो करके नदियों के तटों पर विद्यमान हो करके**, ऋषियों ने बहुत सा अनुसन्धान प्रभु को निहारते हुए प्रभु से वार्त्ता प्रगट करते रहते थे। हमारे यहाँ नाना रूपों में, कुशा मानी जाती है। कुशा के आसन पर सर्प नही आ पाता, और कोई प्राणी उस अव्रत नही कर पाता तो आसन पवित्र माना गया है। कुशा भी हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में बारह प्रकार की होती है। बारह प्रकार की कुशाओं को ले करके यदि उसको जल में तपाया जाता है। तपाने से उनका रस बनाया जाता है रस बना करके उसको जल की कृतिका बना करके जब खरल रह जाता है। उसको मधु वर्णिता में पान करने से वह सर्प जैसे विषैले प्राणियों को विजय करने वाला बन जाता है।

51. योग दर्शन २.५४

स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥

स्वविषय-असम्प्रयोगे, चित्तस्य-स्वरूपानुकार-इव-इन्द्रियाणाम् .प्रत्याहार:॥

स्वविषय - अपने- अपने विषयों अर्थात कार्यों के साथ, असम्प्रयोगे - संपर्क सम्बन्ध न होने से, चित्तस्य- स्वरूपानुकार - चित्त के वास्तविक स्वरूप के, इव- समान या अनुसार, इन्द्रियाणाम् - इन्द्रियों का होना, प्रत्याहार:- प्रत्याहार कहलाता है ।

जब सभी इन्द्रियों का अपने –अपने कार्यों के साथ सम्बन्ध न होने से वे इन्द्रियां चित्त के वास्तविक स्वरूप के जैसे हो जाती हैं । इन्तोद्रियों की ऐसी स्थिति को प्रत्याहार

कहते हैं । प्रत्याहार- प्रत्याहार का अर्थ है-पीछे लौटाना। इन्द्रियों को उनके भोंगों से लौटाने का नाम प्रत्याहार है।जब आंखें खुली रहने पर भी रूप को देखना बन्द कर दें, कान शब्दों का सुनना बन्द कर दें, नासिका गन्ध का ग्रहण न करे, जिह्वा रस को न चखे और त्वचा स्पर्श का अनुभव न करे,उस अवस्था का नाम प्रत्याहार है।

52. योग दर्शन २.५५

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ॥

ततः, परमा, वश्यता-इन्द्रियाणाम् ॥

तत- उसके बाद अर्थात प्रत्याहार की सिद्धि होने पर, परमा - परम अर्थात सबसे ऊँचा, वश्यता- वशीकरण अर्थात नियंत्रण, इन्द्रियाणाम्- इन्द्रियों पर आता है।

उस प्रत्याहार के सिद्ध होने से योगी साधक का इन्द्रियों पर पूरी तरह से नियंत्रण हो जाता है।

53. योग दर्शन २.५३

धारणासु च योग्यता मनसः ॥

धारणासु,च,मनस:योग्यता ॥

च – और, मनस: - मन को, धारणासु - कहीं भी एकाग्र करने की, योग्यता - काबलियत या सामर्थ्य बढ़ जाता है।

प्राणायाम के करने से मन को कहीं पर भी एकाग्र करने या लगाने का सामर्थ्य बढ़ जाता है ।

54. योग दर्शन ३.१

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥

देश, बन्ध:,चितस्य, धारणा ॥

चित्तस्य - चित्त को, देश - शरीर स्थित किसी स्थान (नाभि, हृदय या माथे) पर, बन्ध:- बाँधना अर्थात ठहराना या केन्द्रित करना, धारणा- धारणा होती है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

संसार में यदि कोई शक्तिशाली मन से वस्तु है। तो वह प्राण कहलाया जाता है। तो इस प्राण में मन का मिलान कराने का नाम ही मुनिवरों! धारणा कहा जाता है। उसमें चित्रों का मन और प्राण की सहकारिता से जो प्रकाश आता रहता है। आत्मा का प्रकाश ज्यों ज्यों आता रहता है त्यों त्यों मानव समाधिस्थ होता रहता है। यह जो संसार है, मानो जितना यह प्रपञ्च दृष्टिपात आता है, मान अपमान वाला जो जगत है इससे वह योगी उदासीन होता रहता है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज प्रत्येक मानव को संसार में वह समय तो प्रायः मानव के द्वार पर आता ही है कि वह ब्रह्म अपृही अस्ति सुप्रजः क्योंकि प्रत्येक मानव संसार में उदासीन होता रहता है तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! संसार में मन और प्राण को दोनों को सहकारिता में ही लाना है।

मुनिवरों! देखो, धारणा नाम केवल उसी को कहा गया है। जब पुनः से संसार को एकत्रित करके और मन में इसका मिलान हो जाता है। मुनिवरों! क्योंकि मन इस प्रकृति का होने के नाते यह प्रकृति का जितना भी प्रपञ्च है जितना भी जगत है मानो यह मन की ही रचना है। यह मन का ही एक सहकारी कृत्य कहलाया गया है। यह मन का ही नृत्य हो रहा है। वह जो मन का नृत्य है, मुनिवरों! देखो, प्राण में पुनः से परणित करना है। तो देखो, उस समय स्थित करके त्यों त्यों प्राण की अवस्था परणित होती रहती है।

55. योग दर्शन ३.२

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥

तत्र, प्रत्यैक-तानता, ध्यानम् ॥

तत्र- जहाँ पर अर्थात जिस स्थान पर धारणा का अभ्यास किया गया है, उसी स्थान पर, प्रत्यय- ज्ञान या चित्त की वृत्ति की, एकतानता- एक समान ज्ञान अर्थात एकरूपता

बनी रहना ही, ध्यानम् - ध्यान है ।

जहाँ जिस स्थान पर भी धारणा का अभ्यास किया गया है, वहाँ पर उस ज्ञान या चित्त की वृत्ति की एकरूपता या उसका एक समान बने रहना ही ध्यान कहलाता है।

56. सांख्य दर्शन ३.३०

रागो-पहतिर्ध्यानम् ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

ज्ञान के रोकने वाले रजोगुण के कार्य जो विषय-वासनादिक हैं उनका जिनसे नाश हो जाय, उसे ध्यान कहते हैं। यहां पर ध्यान शब्द से धारणा ध्यान, समाधि, इन तीनों का ग्रहण है।

57. सांख्य दर्शन ६.२५

ध्यानं निर्विषयं मनः ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द

जिसमें मन निर्विषय हो जाय उसी का नाम ध्यान है और, यह ध्यान नही समाधि का लक्षण है।

शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

तो मुनिवरों! देखो, इन रूपों से हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि हम इस मन की धारा को प्राण से जब सहकारिता कर देते हैं इससे मिलान कर देते हैं। दोनों का मिलान हो करके अपना ध्यान समाधि में स्थित हो जाता है।

जगत में आने का जो हमारा उद्देश्य है, मानो वह उद्देश्य है, इस संसार में संसार को एकाग्र करके मन और प्राण को मिलान करके धारणा, ध्यान, समाधि में प्रविष्ट होना है। वह जो चित्त की सीमा है उसे नष्ट करना है।

? सबसे प्रथम मानव में ध्यान की धारणा होनी चाहिए। धारणा में क्या किया जाता है? वह धर्म है। धर्म को हम धारणा कहते हैं। धर्म क्या है? मौलिक जो रूप है उसको

धारण करके धर्म ध्वनि को अपनाता है। धर्म ध्वनि को अपना करके मनस्तत्व को प्राण के द्वारा मिलान करने का प्रयास करता है।

58. योग दर्शन १.२३

ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥

ईश्वर-प्रणिधानात्, वा॥

वा – अथवा ईश्वर-प्रणिधानात् - ईश्वर के प्रति भक्ति से भी (निर्बीज-समाधि की सिद्धि शीघ्र हो सकती है)।

59. अथर्ववेद १०.००७.३९

ओ३म् यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा। यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति विमितेऽमितं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥

पदार्थः (यस्मै) जिसके लिए और (यस्मै) जिसके लिए ही (देवाः) देववृत्ति के पुरुष (हस्ताभ्याम्) हाथों से, (पादाभ्याम्) पावों से (वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा) वाणी, श्रोत्र व आँख से (सदा) सदा (बलिम्) पूजा को (प्रयच्छन्ति) प्राप्त कराते हैं, और वस्तुतः इस पूजा के कारण ही देव बन पाते हैं । इन देवों के सब कार्य प्रभु – पूजन के लिए ही होते हैं। जो प्रभु (विमिते) विविधरूपों में बने हुए इस मित (परिमित) संसार में (अमितम्) असीम- अपरिमित व अनन्त है, (तम्) उन्हीं को (स्कमभं ब्रूहि सर्वाधार कहो। (सः एव) वे ही (स्वित्) निश्चय से (कतमः) अतिशयेन आनन्दमय है। पण्डित हरिशरण

श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

परन्तु जो यौगिक और दार्शनिक विचार होते हैं। जो मुनि बन जाते हैं, उनकी प्रवृत्तियों में ध्यान प्रवे कुछ अन्तर प्रतीत होने लगता है। भिन्नता दृष्टिपात आती है। अपनी अन्तरात्मा में ही प्रभु! के जब दर्शन कर लेते हैं। तो उनके मस्तिष्क में यह वाक्य आता है कि प्रभु जब हम में है, और हम प्रभु में हैं तो पवित्र वस्तु न कोई आती है, और न कोई जाती है। विचार वह कि यह चक्र है, प्रकृति का। प्रकृति के आवेशों में

आते हैं और आकर के चले जाते हैं। परन्तु विचार यह कि न कोई आना है, न कोई जाना है।

60. योग दर्शन २.३१

जातिदेशकालसमयानविच्छन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम।

जाति, देश, काल और निमित्त की सीमा से रहित, सार्वभौम होने पर, महाव्रत हो जाते हैं।

61. योग दर्शन २.३३

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्॥

वितर्क, बाधने, प्रतिपक्ष, भावनम्॥

वितर्क - वितर्क (यम और नियमों के हिंसादि के भाव), बाधने - (यम-नियम के पालन में) बाधा पहुँचावें तब, प्रतिपक्ष - उनके प्रतिपक्षी (विचारों का बारंबार), भावनम् - चिन्तन (करना चाहिए)। प्रतिपक्ष की भावना करे।

62. यजुर्वेद ३४.१

ओ३म् यज्जाग्रंतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैतिं। दूरङ्गमं ज्योतिंषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु॥

पदार्थः जगदीश्वर वा राजन्! आपकी कृपा से (यत्) जो (दैवम्) आत्मा में रहने वा जीवात्मा का साधन (दूरङ्गमम्) दूर जाने, मनुष्य को दूर तक ले जाने वा अनेक पदार्थों का ग्रहण करने वाला (ज्योतिषाम्) शब्द आदि विषयों के प्रकाशन श्रोत्र आदि इन्द्रियों को (ज्योतिः) प्रवृत्त करने हारा (एकम्) एक (जाग्रतः) जागृत अवस्था में (दूरम्) दूर-दूर (उत्, ऐति) भागता है (उ) और (तत्) जो (सुप्तस्य) सोते हुए का (तथा, एव) उसी प्रकार (एति) भीतर अन्तःकरण में जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) सङ्कल्प-विकल्पात्मक मन (शिवसङ्कल्पम्) कल्याणकारी धर्म विषयक इच्छावाला (अस्तु) हो॥

63. अथर्ववेद ०८.००४.२२

ओ३म् उलूंकयातुं शुशुलूकंयातुं जुहि श्वयांतुमुत कोकंयातुम्। सुंपुर्णयांतुमुत गृध्रंयातुं दृषदेंव प्र मृंण रक्षं इन्द्र ॥

पदार्थः (इन्द्र) हे प्रतापी राजन् ! (उलूकयातुम्) उल्लू के समान झपटनेवाले, (शुशुलूकयातुम्) बड़े अचेत के समान दुःखदायी, (श्वयातुम्) कुत्ते समान पीड़ा देनेवाले (उत) और (कोकयातुम्) भेड़िया समान हिंसा करनेवाले, (सुपर्णयातुम्) श्येन पक्षी समान शीघ्र चलनेवाले (उत) और (गृध्रयातुम्) गिद्ध समान दूर पहुँचनेवाले [उपद्रवी] को (जहि) मार और (दृषदा इव) जैसे शिला से (रक्षः) राक्षस को (प्र मृण) नाश कर दे ॥

64. योग दर्शन २.३४

वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम्॥

वितर्काः, हिंसा, आदयः, कृत, कारित, अनुमोदिताः, लोभ, क्रोध, मोह, पूर्वकाः, मृदु, मध्य, अधिमात्राः, दुःख, अज्ञान, अनन्त, फलाः, इति, प्रतिपक्ष, भावनम्॥

हिंसा - (यम और नियमों के विरोधी) हिंसा, आदयः - आदि (भाव), वितर्काः - वितर्क (कहलाते हैं; जो तीन प्रकार के होते हैं)-, कृत - स्वयं किए हुए, कारित - , दूसरों से करवाये हुए (और), अनुमोदिताः - अनुमोदित किए हुए। पूर्वकाः - (इनके) कारण हैं, लोभ - लोभ, क्रोध - क्रोध (और), मोह - मोह । मृदु - (इनमें भी कोई) मृदु, मध्य - मध्यम (और), अधिमात्राः - बड़ा (होता है), दुःख - ये क्लेश (और), अज्ञान - अज्ञान (का), अनन्त – अनन्त, फलाः - फल देनेवाले हैं। इति - ऐसा (विचार करना ही), प्रतिपक्ष - प्रतिपक्ष (की) , भावनम् - भावना (है) ।

यम और नियमों के विरोधी हिंसा आदि भाव वितर्क कहलाते हैं; जो तीन प्रकार के होते हैं - स्वयं किए हुए दूसरों से करवाये हुए और अनुमोदित किए हुए । इनके कारण हैं - लोभ, क्रोध और मोह । इनमें भी कोई मृदु, मध्यम और बड़ा होता है ये

क्लेश और अज्ञान का अनन्त फल देनेवाले हैं । ऐसा विचार करना ही प्रतिपक्ष की भावना है ।

65. योग दर्शन। ३.३

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्॥

स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज

शब्दार्थः मैत्री , करुणा , मुदिता , उपेक्षणाम् , सुख , दुःख , पुण्य , अपुण्य , विषयाणाम् , भावनात: , चित्त-प्रसादनम् ॥

सूत्रार्थः सुख - मित्रता। दुःख - दया। पुण्य - आनन्द। अपुण्य - उपेक्षा। सुखी, दुःखी, पुण्यात्मा और पापात्मा के विषयों में क्रमशः मित्रता, दया, आनंद और उपेक्षा की भावना से चित्त प्रसन्न और स्वच्छ होता है ।

भावार्थः मेरे इस मित्र को भले प्रकार सुख बना रहे, इस प्रकार चित्त को मैत्री आदि के तत्पर करने का नाम "भावना" है, सुखी पुरूषों में मैत्री की भावना, इस दुःखी का दुःख कैसे निवृत्त होगा, इस प्रकार दुःखी पुरूषों में दया की भावना, धर्मात्मा जीवों के धर्म को देखकर "हां इसने शुभकर्म किया" इस प्रकार धार्मिक जीवों में मुदिता की भावना, अधर्मी पुरूषों के पापाचरण को देखकर पाप की उपेक्षा से उनमें उदासीनता की भावना करनी चाहिये। इससे चित्त के **ईष्या** आदि मल निवृत्त हो जाते हैं अर्थात् "मैत्री भावना" से ईर्षा, "करूणा भावना" से अपकार की इच्छा, "मुदिता" ओर "उपेक्षा" भावना से क्रोध रूप मल की निवृत्ति हो जाती है, इन ईर्षा आदि मलों की निवृत्ति हो जाने से निर्मल हुआ चित्त ईश्वर प्रणिधान में शीघ्र ही स्थिर होता है॥ तात्पर्य्य यह है कि अभ्यास से शुद्ध हुआ चित्त ईश्वरप्रणिधान के योग्य होजाता है॥ अब पूर्वोक्त मलों से रहित चित्त की स्थिति का अन्य उपाय कथन करते हैं।

स्वामी सत्यपति जी महाराज

शब्दार्थ (मैत्री - करुणा - मुदिता - उपेक्षाणाम्) मित्रता, दया, प्रसन्नता, उदासीनता की (सुख-दुःख-पुण्य-अपुण्य - विषयाणाम्) सुख - दुःख - पुण्य - अपुण्य विषय वालों में (भावनात :) भावना के अनुष्ठान से (चित्त - प्रसादनम्) चित्त, प्रसन्न और एकाग्र होता है।

सूत्रार्थः - सुख - दुःख - पुण्य - अपुण्य विषय वाले व्यक्तियों में क्रमशः मित्रता, दया, प्रसन्नता, उदासीनता की भावना के अनुष्ठान से चित्त की प्रसन्नता और एकाग्रता होती है।

व्यास भाष्य संस्कृतः तत्र सर्वप्राणिषु सुखसंभोगापन्नेषु मैत्रीं भावयेत्, दुःखितेषु करुणाम्, पुण्यात्मकेषु मुदिताम्, अपुण्यशीलेषूपेक्षाम्। एवमस्य भावयतः शुक्लो धर्म उपजायते। ततश्च चित्तं प्रसीदति, प्रसन्नमेकाग्रं स्थितिपदं लभते॥

व्यास भाष्य देवनागरीः उन भावनाओं में से सुख भोगयुक्त सब प्राणियों में मैत्री की, दुःखी प्राणियों में करुणा की, पुण्यात्माओं में हर्ष की और अपुण्यत्माओं में उपेक्षा की भावना करनी चाहिए। इस प्रकार भावना करने वाले उपासक के आत्मा में शुद्ध धर्म उत्पन्न होता है। उससे चित्त प्रसन्न होता है। प्रसन्न चित्त एकाग्र होकर स्थिति पद को प्राप्त होता है॥

योग प्रकाशः इस सूत्र में चित्त को प्रसन्न करने के उपाय बतलाये हैं। योगाभ्यासी व्यवहार के समय में अनेक प्रकार के मनुष्यों के सम्पर्क में आता है। यदि वह उनके साथ व्यवहार करना नहीं जानता तो उसकी मन:स्थिति योगाभ्यास के अनुकूल नहीं रहती। इसलिए सूत्रकार ने साधक का किसके साथ कैसा व्यवहार हो यह उपदेश किया। संसार में अनेक प्रकार के मनुष्य हैं। कोई धार्मिक और सुखी है, कोई धार्मिक होते हुए भी सुख साधनों की न्यूनता के कारण दुःखी है। कोई योगाभ्यासी पुण्यात्मा है। कोई अन्यायकारी अपुण्यात्मा है। इन सबके साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिये कि

व्यक्ति का मन प्रसन्न बना रहे। जो सुख साधन सम्पन्न और धार्मिक हैं, उनके साथ मित्रता का व्यवहार करें। क्योंकि कभी-कभी व्यक्ति सुख साधन सम्पन्न मनुष्यों को देखकर उनसे द्वेष करने लगता है कि ये इतने सम्पन्न क्यों हो गये हैं, इनकी हानि होनी चाहिए। इससे योगाभ्यासी का चित्त खिन्न हो जाता है। खिन्न होने से उसमें एकाग्रता नहीं आ पाती। यदि वह सुख सम्पन्न मनुष्यों को देखकर उनसे मित्रता का व्यवहार करता है तो चित्त प्रसन्न होता है और उससे ईर्ष्या- द्वेष दूर हो जाते हैं। जब व्यक्ति दुःखियों को देखता है तो उनके प्रति घृणा उत्पन्न होती है। घृणा करने से चित्त की प्रसन्नता भंग हो जाती है और दुःखियों का उपकार करना भी छूट जाता है। यदि योगाभ्यासी दुःखियों पर दया करता है तो उनके प्रति प्रेम उत्पन्न होता है और वह उन दुःखियों की तन, मन और धन से सहायता करता है। सहायता करने से उनका दुःख दूर होता है और सुख की प्राप्ति होती है। इससे साधक के मन में घृणा उत्पन्न नहीं होती किन्तु उल्लास होता है। योगाभ्यासी पुण्यात्माओं को देखता हैं तो उनके प्रति द्वेष उत्पन्न हो सकता है। जब उनका सम्मान होता है तब उनके सम्मान को सहन नहीं कर पाता, उनसे द्वेष करने लगता है। द्वेष से चित्त में एकाग्रता नहीं हो पाती। इस द्वेष को दूर करने के लिए उनके प्रति हर्ष की भावना करनी चाहिए इससे योगाभ्यासी के मन में द्वेष उत्पन्न नहीं होता किन्तु हर्ष उत्पन्न होता है। अपुण्यात्माओं को देखकर न राग और न द्वेष करना चाहिए किन्तु उपेक्षा करनी चाहिये। क्योंकि राग करने से अधर्माचरण में रुचि उत्पन्न होती है और उस अपुण्यात्मा जैसा व्यक्ति का जीवन बन जाता है। द्वेष करने से झगड़े उत्पन्न होते हैं जिससे योगाभ्यासी योग मार्ग को छोड़कर लड़ाई-झगड़ों में लग जाता है । यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि अपुण्यात्माओं के विषय में भी यह इच्छा रखनी चाहिए कि ये भी अधर्माचरण को छोड़कर धर्माचरण करें जिससे इनका दुःख दूर हो और ये सुखसम्पन्न हो जाएँ। चित्त

को प्रसन्न करने के लिए यह भी उपाय है कि संसार के मनुष्य आदि सभी प्राणी ईश्वर के पुत्र हैं। उन सबके साथ आत्मवत् व्यवहार करना चाहिये। क्योंकि ईश्वर हमारी माता, पिता, आचार्य, उपास्य, राजा है और वह हम सबका कल्याण करना चाहता है। योगाभ्यासी यह निश्चय करे कि मैं भी सबका कल्याण करने का पूर्ण प्रयास करूँगा। ऐसा विचार और आचरण करने से चित्त प्रसन्न होता है। इससे चित्त को एकाग्र करने में सफलता मिलती है॥

राजर्षि भोजदेव

राजर्षि भोजदेव वृत्तिः "मैत्री सौहार्दम्। करुणा कृपा। मुदिता हर्षः। उपेक्षौदासीन्यम्। एता यथाक्रमं सुखितेषु दुःखितेषु पुण्यवत्सु अपुण्यवत्सु च विभावयेत्। तथा हि सुखितेषु साधु एषां सुखित्वमिति मैत्रीं कुर्यान्न तु ईर्ष्याम्। दुःखितेषु कथं नु नामैषां दुःखनिवृत्तिः स्यादिति कृपामेव कुर्यान्न ताटस्थ्यम्। पुण्यवत्सु पुण्यानुमोदनेन हर्षमेव कुर्यान्न तु किमेते पुण्यवन्त इति विद्वेषम्। अपुण्यवत्सु चौदासीन्यमेव भावयेन्नानुमोदनं न वा द्वेषम्। सूत्रे सुखदुःखादिशब्दैस्तद्वन्तः प्रतिपादिताः। तदेवं मैत्र्यादिपरिकर्मणा चित्ते प्रसीदति सुखेन समाधेराविर्भावो भवति। परिकर्म चैतद्वाह्यं कर्म। यथा गणिते मिश्रकादिव्यवहारो गणितनिष्पत्तये संकलितादिकर्मोपकारकत्वेन प्रधानकर्मनिष्पत्तये भवति एवं द्वेषरागादिप्रतिपक्षभूतमैत्र्यादिभावनया समुत्पादितप्रसादं चित्तं संप्रज्ञातादिसमाधियोग्यं संपद्यते। रागद्वेषावेव मुख्यतया विक्षेपमुत्पादयतः। तौ चेत्समूलमुन्मूलितौ स्यातां तदा प्रसन्नत्वान्मनसो भवत्येकाग्रता।

राजर्षि भोजदेव वृत्तिः भाष्यः स्वामी विज्ञानाश्रमजीः (मैत्री सौहार्दम्) मैत्री सुहृदय भाव को कहते हैं, बिना उपकार के मित्रता करने को सुहृदय भाव कहते हैं। (करुणा कृपा) करुणा का अर्थ कृपा है। (मुदिता हर्षः) मुदिता हर्ष को कहते हैं। (उपेक्षौदा सीन्यम्) उपेक्षा उदासीनता को कहते हैं (एता यथाक्रमं) यह सब यथाक्रम (सुखितेषु दुःखितेषु

पुण्यवत्सु अपुण्यवत्सु च विभावयेत्) सुखियों, दुःखियों, पुण्यात्मा, पुण्य रहित पुरुषों में भावना करे। (तथा हि) उसी प्रकार (सुखितेषु साधु एषां सुखित्यम्) सुखी पुरुषों में इन पुरुषों को सुख है, बहुत अच्छा है (इति मैत्रीं कुर्या तु ईर्ष्याम्) इस भाव से प्रिति करे किन्तु ईर्ष्या न करे। (दुःखितेषु कथं नु नामैषां दुःख- निवृत्तिः स्यादिति कृपामेव कुर्यान ताटस्थ्यम्) किसी प्रकार इन के दुःख की निवृत्ति हो इस प्रकार कृपा भाव ही करे, किन्तु उसके उपायों में स्वयं न फँस जावे। (पुण्यवत्सु पुण्यानुमोदनेन हर्षमेव कुर्यान्न तु किमेते पुण्यवन्त इति विद्वेषम्) पुण्यात्माओं में पुण्य की प्रसंशा करते हुए प्रसन्न होवे, किन्तु यह क्या पुण्य करने वाले हैं, अर्थात् कुछ नहीं इस प्रकार द्वेष न करे। (अपुण्यवत्सु चौदासीन्यमेव भावयेवानुमोदनं न वा द्वेषम्) पापियों में उदासीन भाव रहे, उन के कर्मों का न अनुमोदन करे न विरोध करे। (सूत्रे सुख दुःखादिशब्देस्तद्वन्तः प्रतिपादिताः) सूत्र में सुख दुःखादि शब्दों से सुख दुःख वाले का प्रतिपादन किया है। (तदेवं मैत्र्यादिपरिकर्मणा चित्ते प्रसीदति) इस प्रकार मैत्री आदि कर्मों से चित्त प्रसन्न होता और (सुखेन समाधिराविर्भावो भवति) सुगमता से समाधि का लाभ होता है। (परिकर्म चैतद्वाभ्कं कर्म) यह मैत्री आदि का परिकर्म तो बाह्य साधन है। (यथा गणिते मिश्रकादिव्यवहारो गणितनिष्पत्तये) जैसे गणित विद्या में जोड़ आदि का व्यवहार गणित निर्णय के लिये है। (संकलितादिकर्मोपकारकत्वेन प्रधानकर्मनिष्पत्तये भवति) वह जोड़ादि कर्म उपकारक भाव से प्रधान कर्म की सिद्धि के लिये होते हैं। (एवं द्वेषरागादिप्रतिपक्षभूतमैत्र्यादिभावनया समुत्पादितप्रसादं चित्तं संप्रज्ञातादिसमाधियोग्यं संपद्यते) इस प्रकार मैत्री आदि भावना द्वारा उत्पन्न हुई प्रसन्नता से द्वेष रागादि शत्रुओं का बाध होने पर चित्त संप्रज्ञातादि समाधि की योग्यता को प्राप्त होता है। (रागद्वेषावेव मुख्य तया विक्षेपमुत्पादयतः) राग द्वेष दोनों मुख्य रूप से विक्षेप को उत्पन्न करते हैं। (तौ चेत्समूलमुन्मूलितौ स्याताां) यदि राग द्वेष दोनों मूल से निर्मूल हो जावें (तदा

प्रसन्नत्वान्मनसो भवत्येकाग्रता) तब प्रसन्नता बाला होने से मन एकाग्र हो जाता है॥